भगवत रावतके काव्य (प्रतिनिधि कविताएँ) में सामाजिक-चेतना

हैदराबाद केन्द्रीय विश्विद्यालय की एम.फिल.(हिंदी)उपाधि हेतु प्रस्तुत लघु-शोध प्रबंध

प्रस्तुतकर्ता

श्रवण कुमार

15HHHL12

2016

हिंदी विभाग

मानविकी संकाय

हैदराबाद केन्द्रीय विश्विद्यालय

हैदराबाद -500046

तेलंगाना(भारत)

CERTIFICATE

This is to certify that the dissertation entitled "BHAGWAT RAWAT KE KAVYA (PRATINIDHI KAVITAEN) ME SAMAJIK CHETNA" (भगवत रावत के काव्य (प्रतिनिधि कविताएँ) में सामाजिक चेतना) submitted by SHARVAN KUMAR Bearing Reg. No. 15HHHL12 in partial fulfilment of the requirements for the award of Master of Philosophy in Hindi is a bonafide work carried out by him under my supervision and guidance which is a plagiarism free dissertation.

As far as I know the dissertation has not been submitted previously in par or full to this or any other university or institution for the award of any degree or diploma.

Head of the Department

Signature of the supervisor

Dean of the School of Humanities

DECLARATION

I, SHARVAN KUMAR hereby declare that the dissertation entitled "BHAGWAT RAWAT KE KAVYA(PRATINIDHI KAVITAEN) ME SAMAJIK CHETNA" (भगवत रावत के काव्य (प्रतिनिधि कविताएँ) में सामाजिक चेतना) submitted by me under the guidance and supervision of **Prof. Alok Pandey** is a bonafide research work which is also free from plagiarism. I also declare that it has not been submitted previously in any university or institution for the award of Master of Philosophy. I hereby agree that my dissertation can be deposited in Shodhganga/INFLIBNET

Name of the Student : SHARVAN KUMAR

Sign :

Date :

Signature of Supervisor

Date :

समर्पित

मेरी विद्यालयी शिक्षिका

श्रीमती संतोष देवी जी के चरणों में,

जिनकी मार, स्नेह, आशीर्वाद और ज्ञान

हमेशा मुझे इस दिशा और जीवन में आगे बढ़ने की प्रेरणा देता रहेगा

भगवत रावत के काव्य (प्रतिनिधि कविताएँ) में सामाजिक-चेतना

अनुक्रमणिका

भूमिका **i-iii**

पहला अध्याय : प्रतिनिधि कविताएँ : परिचय एवं महत्व

1. संकलन-परिचय एवं महत्व 1-4
2. भाषा-प्रवृति 5-10
3. निष्कर्ष 11-12

दूसरा अध्याय : साहित्य और समाज

1. साहित्य : अर्थ और परिभाषा 13-14
2. समाज : अर्थ और परिभाषा 15-16
3. साहित्य और समाज का अंत:संबंध 17-19
4. चेतना : अर्थ और परिभाषा 20
5. साहित्य में सामाजिक-चेतना : महत्व और मानदंड 21-24
6. निष्कर्ष 25

तीसरा अध्याय : भगवत रावत के काव्य (प्रतिनिधि कविताएँ)

में सामाजिक-चेतना 26-30

1. आम आदमी के प्रति चेतना 31-49

2. स्त्रियों, बच्चों एवं दलितों के प्रति चेतना 50-65

3. पारंपरिक मूल्यों एवं सामाजिक मानवीय संबंधों के प्रति चेतना 66-78

4. निष्कर्ष 79

उपसंहार 80-83

सन्दर्भ सूची 84-85

भूमिका

समकालीन हिंदी कविता में जिन प्रमुख कवियों ने अपनी सार्थक सृजनशीलता के द्वारा एक व्यापक फलक प्रदान किया है, उनमें भगवत रावत का योगदान स्वीकारणीय है। कवि का दायित्व केवल अपने भावों को शब्दबद्ध करना ही नहीं होना चाहिए बल्कि सामाजिक प्रतिबद्धता भी उसमें एक अनिवार्य गुण की तरह समाहित होनी आवश्यक है। वास्तव में वही कवि साहित्य के इतिहास में अपना स्थान बना पाता है जिसने सामाजिक दायित्व को अपने साहित्य में स्थान दिया हो। जो अपने समाज की परिस्थितियों के प्रति निरंतर जागरूक रहा हो। भगवत रावत उन विरले कवियों में ही आते हैं जिन्होंने सामाजिक दायित्व को पूरी प्रतिबद्धता के साथ निभाया है। समाज में साधारण और हाशिये के लोगों, स्त्रियों, बच्चों, दलितों को जो स्थान इन्होने अपने काव्य में दिया है वह इनकी सृजनशीलता को सार्थक बनाता है। सामाजिक पारंपरिक मानवीय मूल्यों को लेकर इन्होने जो काव्य सृजन किया है वह इनकी चेतना को स्पष्ट करता है।

जब से साहित्य से लगाव हुआ है, कविता के प्रति मेरी विशेष अभिरुचि रही है। शोध के क्षेत्र में जब कदम रखा तो कविताओं का क्षेत्र अधिक नजदीक लगा। समकालीन कवियों में भगवत रावत मेरे प्रिय कवियों में रहे हैं। इनकी कविताओं से अक्सर मेरी मुठभेड़ होती रही है। दिल्ली विश्विद्यालय से एम.ए. की पढाई करने के दौरान की बात है जब मैं वागर्थ पत्रिका का कोई अंक खरीद कर लाया था। उसे जब मैंने खोला तो भगवत रावत की एक कविता से सामना हो गया और देखते ही देखते वह कविता मेरे अंतर्मन में उतरती चली गयी। एकदम बड़े ही साधारण रूप से उकेरी गई कवि की संवेदना मेरी संवेदना से जुडती

चली गई। उसके बाद जब भी कहीं अन्य पत्र-पत्रिकाओं में इनकी कविताओं से सामना होता, मैं उन्हें विशेष लगाव के साथ पढ़ता। बाद में उनके एक-दो अन्य काव्य संग्रह भी मैंने खरीदे और उन्हें पढ़ते हुए अपनी छोटी सी पुस्तकों की 'लाइब्रेरी' में हमेंशा के लिए अपना साथी बना लिया। 2012 में एम.ए. करने के दौरान ही एक दिन जब खबर मिली की भगवत रावत नहीं रहे तो न जाने क्यों एक विशेष दुःख की अनुभूति हुई। बहरहाल हैदराबाद विश्वविद्यालय में जब एम.फिल. के लघु शोध-प्रबंध विषय को चुनने का अवसर मिला तब मैंने अपने शोध-निर्देशक प्रो. आलोक पाण्डेय सर से अपनी इस कवि को लेकर जिज्ञासा जाहिर की। शुरुआत में मेरी इच्छा भगवत रावत के किसी एक कविता संग्रह को लेकर शोध की दिशा में आगे बढ़ने की थी। फिर मेंरे निर्देशक ने सलाह दी कि क्यों न मैं उनके किसी प्रतिनिधि संकलन को लेकर अपने शोध की दिशा में आगे बढ़ूँ ! इसका फायदा यह भी था कि 'भगवत रावत की सामाजिक चेतना' के जिस विषय को लेकर मैं काम करना चाहता था उसमें किसी एक कविता संग्रह की अपेक्षा 'प्रतिनिधि संकलन' पर कार्य करने पर मैं कहीं अधिक प्रमाणिक रूप में अपनी बात रख पाता। इस तरह हाल ही में मई 2014 में अरविन्द त्रिपाठी के संपादन में राजकमल से प्रकाशित 'भगवत रावत : प्रतिनिधि कविताएँ' संकलन पर लघु-शोध प्रबंध लिखने का मैंने अंततः निर्णय लिया।

मेंरे इस लघुशोध-प्रबंध का उद्देश्य 'भगवत रावत की सामाजिक चेतना' को आलोचनात्मक रूप में विवेचित और विश्लेषित करना है। इसके लिए मैंने शोध की 'आलोचनात्मक प्रविधि' का सहारा लेते हुए इनके रचनाकर्म का विश्लेषण करने का प्रयास किया है। मार्क्स ने लिखा था 'मनुष्य की चेतना उसके अस्तित्व को निर्धारित नहीं करती, बल्कि उसका सामाजिक अस्तित्व उसकी चेतना को निर्धारित करता है।'वास्तव में

अप्रत्यक्ष रूप से यही कथन मेरे इस लघु-शोध प्रबंध का आधार बिंदु है। भगवत रावत की सामाजिक परिवेश की काव्य यात्रा में जिन आम आदमियों, स्त्रियों, बच्चों और दलितों का आगमन हुआ और जिन पारंपरिक मानवीय मूल्यों ने भगवत रावत की चेतना का निर्माण किया उन्ही पर विश्लेष्णात्मक दृष्टि यहाँ पर डालने का प्रयास हुआ है।

प्रस्तुत लघुशोध-प्रबंध के पहले अध्याय में संग्रह परिचय एवं उसके महत्व के साथ कवि की भाषा पर बात रखी गई है । दूसरे अध्याय 'साहित्य एवं समाज' के अंतर्गत विभिन्न भारतीय एवं पाश्चात्य साहित्यकारों और विद्वानों के विचारों के आलोक में इनके अर्थ और परिभाषा पर दृष्टि डालने के साथ-साथ इनके आपसी संबंध को उजागर करने का प्रयास किया गया है। साथ ही 'चेतना' का अर्थ और परिभाषा समझते हुए साहित्यकार की चेतना के महत्व और मानदंड को उसके सामाजिक परिवेश में समझने का प्रयास किया गया है ।तीसरे अध्याय में पहले दोनों अध्यायों के आधारस्वरूप भगवत रावत की सामाजिक चेतना को आलोचनात्मक दृष्टि से विवेचित और विश्लेषित करने का प्रयास किया है जिसे आगे तीन उपाध्यायों 'आम आदमी के प्रति चेतना', स्त्रियों, बच्चों एवं दलितों के प्रति चेतना' और 'पारंपरिक मूल्यों एवं सामाजिक मानवीय संबंधों के प्रति चेतना', शीर्षकों में विभाजित करते हुए अंत में निष्कर्ष दिया गया है।

अंततः मैं अपने मार्गदर्शक प्रो. आलोक पाण्डेय सर का हृदय से आभारी हूँ जिनका मार्गदर्शन और सुझाव मुझे मिलता रहा तथा साथ ही विभाग के समस्त गुरुजनों एवं अन्य साहित्यिक मित्रों का भी जिन्होंने समय समय पर मुझे इस दिशा में प्रोत्साहित किया।

श्रवण कुमार –

पहला अध्याय

प्रतिनिधि कविताएँ : परिचय एवं महत्व

1. संकलन का परिचय एवं महत्व

प्रस्तुत कविता संकलन आलोचक, समीक्षक अरविंद त्रिपाठी के कुशल संपादन में (राजकमल पेपरबैक्स,पहला संस्करण,2014,नई दिल्ली) से प्रकाशित है । इसे उन्होंने भगवत रावत की ही पुण्य स्मृति में समर्पित किया है। दुर्भाग्य से 25 मई 2012 में भगवत रावत का निधन हो गया था अन्यथा संपादक की मंशा थी कि प्रस्तुत संकलन कवि की ही सहमती से उनके जीवनकाल में ही तैयार करके छपवाया जाता। इस संबंध में अरविन्द त्रिपाठी इस संकलन की भूमिका में स्वयं लिखते हैं "तय तो यही था कि यह संकलन भगवत जी के जीवनकाल में ही प्रकाशित होता। पर जीवन की आपाधापी और उसकी जद्दोजहद ने हमें देरी करने के लिए मजबूर कर दिया था। जग से ओझल भगवत जी से क्षमा-याचना करते हुए यह संग्रह उनकी पुण्य स्मृति में उन्हीं को सौंपता हूँ।"[1] प्रस्तुत संकलन को तैयार करने में भगवत रावत की पुत्री व समकालीन कविता में स्थान रखने वाली कवयित्री प्रज्ञा रावत ने भी अपना सहयोग दिया है। इस संबंध में वे आगे लिखते हैं "कहना चाहिए यदि कवि-पुत्री और समकालीन कविता की प्रखर कवयित्री प्रज्ञा रावत ने इस संचयन को तैयार करने में अपने दुःख की घनीभूत वेदना के बावजूद, बेहिचक सहयोग न किया होता तो शायद इस तरह इस रूप में यह संकलन न आ पाता।"[2]

---

[1] भगवत रावत : प्रतिनिधि कविताएँ, (2014) अरविन्द त्रिपाठी (सम्पा), भूमिका से, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली : 18.

[2] वही पृष्ठ

प्रस्तुत संकलन में कुल मिलाकर छोटी-बड़ी 98 शीर्षकों में कविताएँ हैं जो भगवत रावत के जीवनकाल में समय समय पर प्रकाशित हुए विभिन्न कविता-संग्रहों से चुनी गई हैं । इसके साथ ही संपादक ने कविताओं की शुरुआत में ही भगवत रावत की 1955-56 में लिखी गईं दो अप्रकाशित कविताओं को भी स्थान दिया है । उस समय के युवा मन की ये छोटी कविताएँ क्रमशः 'अश्रु धीरे से गिरा देना' व 'अपनी बात' शीर्षकों के अंतर्गत कवि के युवा स्वप्न की कविताएँ दिखाई पड़ती हैं जिसमें वह हौले से अपने संघर्ष के रास्ते पर चुपचाप आगे बढ़ते रहना चाहता है । जिसके मन में भविष्य की कुछ हसीन कल्पनाएँ हैं और जिन्हें प्रतीकात्मक रूप में व्यक्त किया गया है । एक ऐसा कवि मन जहाँ अभी दुनियादारी के अनुभव की छाप पड़नी बाकी है । अत: अभी आशावाद का दामन पकड़े उसका मन छल-कपट राग-द्वेष से लगभग रहित ही नजर आता है-

"हृदय की मुक्त साधों को सपन में बाँधती चिड़िया
बड़ी अनजान सी चिड़िया / कि सच ईमान सी चिड़िया
कपट, छल, राग, द्वेषों से रहित
भगवान सी चिड़िया ।"[3]

संपादक ने जिन प्रमुख कविता संग्रहों से इन कविताओं का चुनाव किया है उनका प्रकाशन वर्ष देते हुए यह भी बताने की कोशिश की है कि तथाकथित संग्रह की कविताएँ किस दौर में संभवतः लिखी गईं । साथ ही भगवत रावत की एकाध जिन कविताओं को पाठक बिना सन्दर्भ के नहीं समझ पाता, उनके शीर्षकों के नीचे चंद पंक्तिओं में सन्दर्भ के रूप में टिपण्णी के माध्यम से संकेत भी किया गया है जिससे आस्वाद में कोई बाधा उत्पन्न

[3] *भगवत रावत : प्रतिनिधि कविताएँ* (2014) अरविन्द त्रिपाठी (सम्पा), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली : 21.

न होने पाए। इस संबंध में 'कहाँ गई री अमरीका', 'हे बाबा तुलसीदास', 'ईसुरी और रजऊ के नाम' आदि को देखा जा सकता है।

'भगवत रावत : सादगी का सौन्दर्यबोध' शीर्षक के अंतर्गत भगवत रावत की कविताओं का मूल्यांकन एवं विश्लेषण करते हुए बहुत ही सटीक एवं सारगर्भित लेख भूमिका के रूप में लिखकर अरविन्द त्रिपाठी ने भगवत रावत के सृजन कर्म और उनकी चेतना को समझने और समझाने का प्रयास किया है जिसमें वो सफल भी रहे हैं। भगवत रावत ने एक तरफ जहाँ छोटी और मध्ययम आकार की कविताएँ लिखी हैं वहीं कुछ लम्बी कविताओं का भी सृजन किया है। प्रस्तुत संग्रह में उन लम्बी कविताओं के महत्वपूर्ण अंशो को आलोचकीय दृष्टि से पहचान कर संपादक ने इसमें स्थान दिया है। मसलन 'सुनो हिरामन', 'कहते हैं कि दिल्ली की है कुछ आबो-हवा और', 'उत्तर-पटकथा बनाम सुराजे-हिन्द' जैसी महत्वपूर्ण कविताएँ अपने प्रमुख अंशों के रूप में यहाँ ली गईं हैं। साथ ही मध्यम आकार की कविताओं में हम यहाँ 'अम्मा से बातें','देश एक राग है' आदि कविताओं को देख सकते हैं। भगवत रावत की अति संक्षिप्त कविताओं में सांकेतिक रूप से बात कहने की जो क्षमता रही है उसे भी पहचानते हुए संपादक ने इसमें स्थान दिया है मसलन 'हमने उनके घर देखे', 'छाया', 'बीते दिन', 'हाल' आदि को देखा जा सकता है।

संपादक के चुनाव के पीछे वास्तव में जिस दृष्टि ने काम किया है देखा जाये तो वह दृष्टि कवि की सामाजिक चेतना को समझने की ही रही है। भगवत रावत की कवि दृष्टि अथवा चेतना के पीछे अपने समाज की जो 'लोक' की अवधारणा रही है वही इन कविताओं में मुखर होकर सामने आयी है। इस लोक में बसने वाला आम आदमी कहाँ है,

यहाँ रहने वाले व्यक्तियों में आपसी संबंध कैसे हैं अथवा कहें कि इस लोक के परिवेश की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, अथवा सांस्कृतिक परिस्थितियाँ कैसी हैं आदि का प्रतिबिम्ब इस संकलन की कविताएँ यहाँ कर रही हैं। इन स्थितियों में व्यक्ति के मानवीय संबंधों को भगवत रावत ने जिस प्रकार संभालकर रखा है इसकी बानगी भी हमें इस संग्रह की कविताओं में मिलती हैं। वैसे तो भगवत रावत की सभी कविताओं का आरम्भ किसी संबोधन, संवाद, बतकही अथवा किसी कथा से होता है। इस संग्रह में भी अनेक ऐसी कविताएँ चुनी गई हैं जो सीधे इन्हीं विशेषताओं से गुजरती हुई पाठक के सीधे अंतर्मन में उतर जाती हैं। 'कहाँ गई री अमरीका', शीर्षक कविता में कवि का सम्बोधन लाजवाब है। इसके साथ ही 'साहबान', 'सुनती हो क्या', 'अम्मा से बातें', आदि कविताओं को भी इस संबंध में देखा जा सकता है।

2. भाषा-प्रवृति :

किसी भी साहित्यिक कृति में एक वस्तु और दूसरा उसका रूप अनिवार्य होते हैं। इसमें भाव और विचार उसकी वस्तु होते हैं और उन्हें प्रकट करने का ढंग उसके रूप का निर्माण करता है। रूप एक व्यापक शब्द है जिसे हम आकृति भी कह सकते हैं। भाषा, शैली, शिल्प आदि इस रूप के ही तत्त्व हैं। एक साहित्यिक कृति में जितना वस्तु का महत्व होता है उतना ही उसका रूप भी महत्वपूर्ण है, कालजयी रचनाओं पर तो दोनों का महत्व समान रूप से देखा जा सकता है। कभी कभी तो रूप की भूमिका निर्णायक भले ही न हो, लेकिन सक्रिय अवश्य होती है।

कवि या साहित्यकार जिस समाज में रहता है, जिस भाषा का प्रयोग करता है वह वास्तव में समाज द्वारा ही निर्मित और विकसित होती है। आज भाषा की एक महत्वपूर्ण शर्त समाज भी है। साहित्य में जब कभी संप्रेषण की समस्या उठती है, उसमें एक समाज आ जाता है जिसमें साहित्यकार को अपनी बात पहुँचानी है और समाज को उसकी बात समझनी है। कुल मिलाकर कहने का अर्थ यही है कि भाषा के लिए समाज एक अनिवार्य शर्त है और साहित्यकार और समाज में सहज संप्रेषणीयता का होना आवश्यक है। इस दृष्टि से तुलसीदास सर्वश्रेष्ठ कवि दिखाई पड़ते हैं। श्रेष्ठ कविता वह नहीं है जो कवि से उत्पन्न होकर कवि तक ही सीमित रह जाये, बल्कि जो सामान्य जन अथवा पाठकों तक भी पहुंचे और उनके हृदय में स्थान बना ले वही भाषा वास्तविक सौन्दर्य बिखेरती है। संप्रेषणीयता का गहरा संबंध कवि के अनुभवों से भी होता है जो तय करती है कि उसे किस अनुभव को कविता में किस ढंग से अभिव्यक्त करना है। इस तरह से संप्रेषण कवि के अनुभवों को भी

प्रभावित करता है। यह उसके अनुभवों को काटता छांटता और उन्हें नई आकृति में ढालता है यदि ऐसा न हो तो कविता में अभिव्यक्त अनुभवों के ग्रहण का दायरा या तो बनेगा ही नहीं, या किसी तरह बन गया तो बहुत सीमित होगा। इस बात की विपरीत स्थिति भी ऐसी ही है। कविता में व्यक्त अनुभव यदि सुबोध हो पर उसकी भाषा दुर्बोध तो फिर वही बात हो जाएगी। निराला की कविताएँ इस संबंध में देखी जा सकती हैं। भगवत रावत के सन्दर्भ में जब इस बात का जायजा लेते हैं तो हम पातें हैं कि यहाँ अनुभव गत संप्रेषणीयता और अभिव्यक्तिगत संप्रेषणीयता का अलग अलग बोध नहीं होता । उसमें अनुभव और अभिव्यक्ति परस्पर अविच्छिन्न हैं। नागार्जुन के संबंध में भी इस अविच्छिन्नता को देखा जा सकता है। भगवत रावत जिस साधारण कथ्य को अपनी कविताओं में जगह देते हैं उसके लिए किसी अलग से भाषा को नहीं गढ़ते हैं। इन्होने अपने आस-पास का, अपने जीवन के विभिन्न पहलुओं का चित्रण जिस भाषा में किया है वह बहुत ही सहज, साधारण, और संप्रेषणीय रही है। बिना किसी शोरगुल के कठोर से कठोर और तीखे शब्दों को भी जितनी सहजता से इनकी भाषा व्यक्त कर देती है वह अपने आप में किसी उपलब्धि से कम नहीं है। सहज और सरल भाषा के गद्य रूप को काव्यात्मकता में रूपांतरित करके नितांत अलंकरण विहीन भाषा रचना इतना आसान कार्य नहीं है जितना वह दिखाई पड़ता है। इस सन्दर्भ में कवि का ही मत है "आज की कविता में जो वर्णात्मकता है उसके पास एक ओर तथ्य परक यथार्थ है तो दूसरी ओर उसी के अनुरूप एक लगभग निःलंकृत भाषा है जिसका गद्यपन जीवन की सारी भंगिमाओं के साथ सामने फैला है और सौंदर्य और काव्य उसके लिए इसी में कहीं छिपा हुआ है।"[4] यहाँ जिस बात को कवि स्पष्ट करना चाहता है वो यही

[4] भगवत रावत, *कविता का दूसरा पाठ और प्रसंग* (2006), वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, : 132.

है कि भाषा भले ही पारंपरिक काव्यांगों या उपकरणों से विहीन दिखाई देती हो लेकिन उसमें प्रभाव डालने या छोड़ने की जो क्षमता होती है उसका सौंदर्य ही अलग होता है यह वही काव्यात्मकता है जो उसे काव्य का वास्तविक स्वरुप प्रदान करती है। भगवत रावत की इन भाषिक प्रवृतियों को कुछ मुख्य बिन्दुओं के अंतर्गत देखा जा सकता है –

i. **वर्णात्मकता :**

भगवत रावत जिस वर्णात्मकता को अपने काव्य में लाते हैं वास्तव में उसमें किसी न किसी कथा की निर्मिति होती है, उसमें विवरण होते हैं, कथा का एक पूरा वातावरण और बिम्ब होता है। इस बारे में कवि, आलोचक अरुण कमल लिखते हैं " उनकी हर कविता कथा है, प्राय इसलिए यहाँ इतने विवरण हैं, कई बार अत्यधिक वर्णन भी; इसीलिए यहाँ एक विवरण ही बहुधा 'हमारे समय का बिम्ब' बन जाता है, और इसीलिए यहाँ इतना प्रसार भी है– समास शैली के विपरीत कथा-वाचन की व्यास शैली"[5]

ii. **कथात्मकता :**

भगवत रावत की भाषा की एक और प्रवृति उनकी भाषा में कथा का होना भी है। वे अक्सर एक कथा को अपनी कविताओं में रचने की कोशिश हमेशा करते हैं जो कविता में उतार चढाव, त्वरा, दूरी-नजदीकी में से होकर गुजरती है तो काव्य का रूप ले लेती है। इन्होने अनेक ऐसी कविताएँ लिखी हैं जिनमें एक कथा का विन्यास होते हुए वें वर्णात्मक रूप ले लेती हैं। इस संबंध में अरविन्द त्रिपाठी लिखते हैं "वे भाषा को कविता में उसी तरह लाते हैं जैसे मौसम में अचानक बारिश आती है। उनकी भाषा का लहजा बतकही का है। उनकी

[5] अरुण कमल (2000), 'भगवत रावत की कविता', *वसुधा,* : अंक48 (जन-जून) : 111-12.

अनेक महत्वपूर्ण कविताएँ जैसे कथा कहती हैं, साधारण आदमी की साधारण जुबान में।"[6] इस संबंध में इनकी 'वह माँ ही थी','भरोसा','कहाँ गयी री अमरीका', 'साहबान','अम्मा से बातें', 'कचरा बीनने वाली लड़कियां', 'अतिथि कथा' आदि शीर्षक कविताओं को प्रमुख रूप से देखा जा सकता है।

iii. **लोक बोली :**

भगवत रावत की भाषिक प्रवृतियों में सबसे बड़ी विशेषता है उसमें 'कलावाद का निषेध' अर्थात कवि ने जो कुछ भी लिखा है वह बहुत ही साधारण और बोलचाल की भाषा में लिखा है। उसमें इनका देशीपन और खांटीपन स्पष्ट झलकता है किन्तु इसका ये भी मतलब नहीं कि इनकी कविताओं से एकदम आत्मसात हुआ जा सकता है, इन्हें समझने के लिए कम से कम इतना तो तय है कि उनसे हड़बड़ी में न मिले। इनकी भाषा जनपदीय बोली से भी हमारा परिचय करवाती है। भगवत रावत बुन्देलखंड़ की संस्कृति के प्रवक्ता और प्रतीक रहे हैं। उनकी कविताएँ एक ओर जहाँ खड़ी बोली की कविताएँ हैं तो दूसरी ओर उन्होंने बुन्देलखंडी बोली में भी कविताएँ लिखी हैं।

"बालापण में हमने मुख से,
जिनके छंद उचारे
उनई ईसुरी की हम परजा
उनई के बोल बिचारे।"[7]

[6] अरविन्द त्रिपाठी,(2015), बहुवचन, अंक 47, (अक्तूबर-दिसम्बर) : 53.

[7] *भगवत रावत : प्रतिनिधि कविताएँ* (2014) अरविन्द त्रिपाठी (सम्पा), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली : 68

बुन्देली के अपने प्रिय कवि 'ईसुरी' पर उन्होंने कई कविताएँ लिखी हैं। अपनी इस लोक बोली के प्रति हमेंशा इनका मोह बना रहा है। आलोचक विश्वनाथ त्रिपाठी अपने एक संस्मरण में लिखते हैं "भगवत यों तो खड़ी बोली में ही बोलते थे, लेकिन जरा सा ही अवसर पाते, बुन्देलखंडी में उतर आते थे और फिर देर तक बुन्देलखंडी में ही बतियाते थे। ईसुरी उनके सर्वाधिक प्रिय कवि थे। सर्वाधिक प्रिय ही नहीं, सर्वाधिक आत्मीय और प्रेरक भी। उन्होंने ईसुरी की लय में अनेक कविताएँ लिखीं हैं। भगवत रावत छंद, लय और लोक-गीतों के दुर्लभ जानकार और गायक थे। मुझे ऐसी कोई भेंट याद नहीं आती, जिसमें उन्होंने बुन्देलखंडी के लोक गीत गाकर न सुनाएँ हों।"[8] इस प्रकार भगवत की खड़ी बोली की कविताओं में भी अक्सर इसका प्रभाव कहीं न कहीं दिखाई दे ही जाता है। तुलसीदास के एक प्रसिद्ध कवित पर कविता लिखते हुए एक पद में वो कह उठते हैं-

"मजे में हैं यहाँ सब
हे बाबा तुलसीदास
कविताई ससुरी अब
कहाँ जाय का करी।"[9]

यहाँ व्यवस्था पर कवि जो व्यंग करना चाहता है उसके लिए भाषा के रूप में अपनी ही लोक बोली का चुनाव करता है जो अधिक प्रासंगिक भी है। इसी प्रकार 'अतिथि कथा' शीर्षक कविता में जजमान कहता है :-

"हमाये मन में कोनाऊ मैल नइयां

[8] विश्वनाथ त्रिपाठी (2012), 'भगवत रावत का जाना या आगमन की आशा', *वर्तमान साहित्य,* वर्ष 28 : (अगस्त) : 07.

[9] *भगवत रावत : प्रतिनिधि कविताएँ* (2014) अरविन्द त्रिपाठी (सम्पा), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली : 51.

आनंद से रहियौ

आप लोगन ने खूब रिसतेदारी निभाई।"[10]

यहाँ कवि की भाषा उसके अपने जनपद की पहचान करवाती है जिसने उनकी शिष्ट भाषा में एक नया रंग भर दिया है। इस प्रकार यह भाषा उनके भाषिक संस्कारों के नए आयाम खोलती है। कवि अपनी लोक भाषा की परम्परा को हमेंशा याद करके उससे जुड़ा रहना चाहता है। लोक के प्रति उसकी गहरी अनुभूति उसके लेखन में ही नहीं बल्कि उसकी स्वयं की बोली में भी दिखाई देती है जो कविता को कहीं अधिक प्रामाणिक और अनुभूतिक बनाती है।

[10] वही पृष्ठ : 86.

3. निष्कर्ष :

भगवत रावत के काव्य सृजन की लगभग 55 वर्ष की लम्बी काव्य यात्रा रही है। दुर्भाग्य से 2012 में 'करुणा' के इस कवि ने हमसे विदा ले ली। अब इनका साहित्य सृजन ही इनका परिचय है। लगभग छठे दशक के बाद शुरू इनकी सृजन यात्रा में समय समय पर अनेक काव्य संग्रह प्रकाशित होते रहे और चर्चा का विषय बनते रहे। अनेक संपादकों ने समय समय पर इनकी चुनिन्दा कविताओं के संकलन प्रकाशित किये। कमला प्रसाद, सुदीप बनर्जी, और राजेंद्र प्रसाद द्वारा सयुंक्त रूप से संकलित व सम्पादित 'हमने उनके घर देखे' 2001 तो काफी चर्चित भी रहा। यहाँ आलोचक समीक्षक अरविन्द त्रिपाठी के संपादन में राजकमल से प्रकाशित इस संग्रह का भी विशेष महत्व है। 'प्रतिनिधि कविताएँ' अर्थात ऐसी कविताओं का संग्रह जो लगभग संपूर्ण काव्य यात्रा का नेतृत्व करता हो। जो कवि के काव्य संसार के संपूर्ण परिवेश को कवि की अनुभूतिक चेतना से सराबोर करता हुआ हमारे सामने खड़ा हो। जहाँ कवि के भावों और भाषा को नेतृत्व मिलता हो। इन शर्तों पर जब हम इस संग्रह का परिचय प्राप्त करते हैं तो हमें कहीं भी निराश होने की आवश्यकता दिखाई नहीं पड़ती। पहले पड़ाव से आखिरी पड़ाव तक भगवत रावत के काव्य संसार को समेंटता यह काव्य संग्रह एक तरफ जहाँ हमें भगवत रावत की अनुभूतिक चेतना और अभिव्यक्ति क्षमता से परिचित करवाता है तो दूसरी और संपादक की कवि के प्रति गहरी आत्मीयता एवं सहृदयता का भी परिचय देता है। संग्रह के महत्व की ओर से कहा जा सकता है कि यहाँ भगवत रावत की अपने सामाजिक परिवेश की ओर भी निगाह रही है जिसमें उन्होंने आम आदमी, समाज में स्त्रियों, दलितों एवं बच्चों की स्थिति तथा समाज के पारंपरिक मूल्यों और मानव के आत्मिक संबंधों को गहरी अनुभूति से व्यक्त

किया है। साथ ही इस संग्रह की भाषा साधारण, सहज और लोक बोली के अनुरूप कवि के वैचारिक और अनुभूतिक अनुभवों को अभिव्यक्त करने में भी सक्षम रही है। उसमें कवि के भावों को व्यक्त होने में कहीं भी कठिनाई नहीं आ पाई है। समाज से संप्रेषण करती हुई कवि की भाषा उसकी चेतना के सभी आयामों को प्रकट करने में सक्षम रही है। अत: कहा जा सकता है कि इस संकलन में भगवत रावत की सामाजिक चेतना एक तरफ जहाँ भाविक रूप से मनुष्यता से जुड़ती है तो भाषिक रूप से भी पीछे नहीं रही है।

दूसरा अध्याय

साहित्य और समाज

1. साहित्य: अर्थ और परिभाषा

'साहित्य' शब्द का प्रचलन प्राय दो अर्थों में होता है। एक तो इसका व्यापक अर्थ है तथा दूसरा संकुचित अर्थ।

साहित्य का व्यापक अर्थ है–संपूर्ण वांग्मय अर्थात विश्व में जो भी लिखित या मुद्रित सामग्री है, चाहे वह किसी भी विषय से सम्बंधित हो, साहित्य कहलाती है। रेनेवेलेक ने भी साहित्य की इस व्यापक अर्थ वाली परिभाषा का उल्लेख किया है। वे लिखते हैं – "साहित्य की एक परिभाषा तो यह की जाती है कि समस्त मुद्रित वांग्मय 'साहित्य' है।"[11] गुलाब राय ने भी साहित्य के इस व्यापक अर्थ का उल्लेख करते हुए लिखा है- " व्यापक अर्थ में साहित्य ऐसी शाब्दिक रचना-मात्र का वाचक है, जिसमें कुछ हित का प्रयोजन हो।"[12] साहित्य के इस व्यापक अर्थ की दृष्टि से धर्म, दर्शन, कला, नीति, विज्ञान, ज्योतिष, व्यापार आदि संबंधी ग्रन्थ सभी 'साहित्य' के अंतर्गत आते हैं।

साहित्य के संकुचित अर्थ से तात्पर्य है-भावना प्रधान साहित्य अथवा ललित साहित्य, जिसे अपने रूढ़ अर्थ में 'काव्य' की संज्ञा दी जाती है। रेनेवेलेक ने साहित्य के इस संकुचित अर्थ को इन शब्दों में व्यक्त किया है –"साहित्य शब्द को साहित्य की कला अर्थात ललित

---

[11] *साहित्य-सिद्धांत,* रेनेवेलेक : आस्टिन वारेन, पृष्ठ : 24.

[12] *काव्य के रूप,* गुलाब राय, पृष्ठ : 07.

साहित्य तक सीमित रखना ही अधिक उपयुक्त मालूम होता है।"[13] गुलाबराय ने भी लिखा है–"साहित्य...अपने रूढ़ अर्थ में काव्य या भावना प्रधान साहित्य का पर्याय है।"[14] इस प्रकार साहित्य के संकुचित अर्थ की दृष्टि से काव्य, कविता, नाटक, कहानी, उपन्यास आदि 'साहित्य' कहलाते हैं।

साहित्य शब्द की व्याख्या करते हुए हिंदी साहित्य कोश में लिखा है –"साहित्य का अर्थ है शब्द और अर्थ का यथावत सहभाव, अर्थात साथ होना। इस प्रकार सार्थक शब्द मात्र का नाम साहित्य है।"[15] गुलाब राय के अनुसार " साहित्यस्य भाव: साहित्यं, अर्थात सहित होने का भाव ही साहित्य है।"[16] इस प्रकार साहित्य के अंतर्गत समस्त मानवीय बोध और भाव समाहित हो जाते हैं।

प्रेमचंद ने साहित्य को जीवन की आलोचना स्वीकार किया है। उन्होंने लिखा है–"साहित्य की बहुत से परिभाषाएं की गईं हैं, पर मेरे विचार में उसकी सर्वोतम परिभाषा 'जीवन की आलोचना' है। चाहे वह निबंध के रूप में हो, चाहे कहानियों के, काव्य के, उसे हमारे जीवन की आलोचना और व्याख्या करनी चाहिए।"[17]

अत: कहा जा सकता है कि साहित्य जीवन की वह रागात्मक एवं भावात्मक अभिव्यक्ति है, जो जीवन की आलोचना एवं व्याख्या करते हुए मानव हित साधन करता है।

---

[13] *साहित्य-सिद्धांत,* रेनेवेलेक : आस्टिन वारेन, पृष्ठ : 27.

[14] *काव्य के रूप,* गुलाब राय, पृष्ठ : 07.

[15] *हिंदी साहित्यकोश-भाग-1*, सं.धीरेन्द्र वर्मा, पृष्ठ : 120.

[16] *काव्य के रूप,* गुलाब राय, पृष्ठ : 03.

[17] *प्रेमचंद : कुछ विचार,* पृष्ठ : 16.

2. **समाज: अर्थ और परिभाषा**

हिंदी शब्दकोश में 'समाज' का अर्थ है–"1. समुदाय, दल, समूह 2. सभा 3. झुण्ड, गिरोह, समूह 4. समान कार्यकर्ताओं का समूह 5. संघठित संस्था आदि।"[18]

प्रसिद्ध समाजशास्त्री सत्यव्रत सिधांतालंकार ने समाज के लिए तीन बातों का होना अनिवार्य माना है –

1.व्यक्तियों की अनेकता 2. पारस्परिक संबंध 3. सामाजिक क्रिया।

इनके अनुसार 'एक व्यक्ति' से 'समाज' बनने के लिए 'व्यक्तियों की अनेकता' आवश्यक है। अनेक व्यक्तियों के होने का अर्थ है–'समूह' का होना। 'समूह' हो तो 'समाज' बने। 'समूह' न हो तो 'समाज' नहीं बन सकता।[19]

समाज बनने के लिए व्यक्तियों की अनेकता अर्थात 'समूह' के साथ-साथ उनमें आपसी संबंध भी होना चाहिए। इसी तथ्य को प्रकट करते हुए वे लिखते हैं–समाज अनेक व्यक्तियों के मिलने से बनता है, परन्तु उन अनेक व्यक्तियों का आपस में 'संबंध' न हो, तब समाज नहीं बन सकता। समाज बनने के लिए जैसे 'अनेकता' आवश्यक है, वैसे उन अनेक व्यक्तियों में कोई न कोई 'पारस्परिक संबंध' भी आवश्यक है।[20]

'सामाजिक क्रिया' को महत्व देते हुए वे आगे लिखते हैं–'अनेकता भी हो, 'संबंध' भी हों, परन्तु अनेक व्यक्तियों के पारस्परिक-संबंध से अगर कोई 'सामाजिक क्रिया' न पैदा हो, तब

---

[18] *हिंदी शब्दकोश,* डॉ. हरदेव बाहरी, पृष्ठ : 805.

[19] *समाजशास्त्र के मूल तत्व,* प्रो.सत्यव्रत सिधांतालंकार, पृष्ठ : 42.

[20] वही पृष्ठ : 42

भी समाज नहीं बन सकता। अनेक व्यक्तियों के पारस्परिक संबंध से एक ऐसी क्रिया उत्पन्न हो जानी चाहिए, जो उनके संबंधों के टूट जाने पर न रह सके तभी कहा जा सकता है कि समाज की उत्पत्ति हुई है। [21]

डॉ नगेन्द्र के अनुसार " सामान्य रूप से, समाज से अभिप्राय सामुदायिक जीवन की ऐसी अनवरत एवं नियामक व्यवस्था से है, जिसका निर्माण व्यक्ति पारस्परिक हित तथा सुरक्षा के निमित्त जाने-अनजाने कर लेते हैं। आरम्भ में इस सामुदायिक व्यवस्था का स्वरुप सरल और व्यापक होता है, परन्तु विकास के साथ वह क्रमशः जटिल होकर वर्ग-व्यवस्था में परिणत हो जाता है।"[22]

इस प्रकार यह सत्य है कि 'समाज' का अस्तित्व तभी कहा जायेगा, जब अनेक व्यक्तियों का पारस्परिक संबंध होगा और उसके परिणामस्वरूप 'सामाजिक क्रिया' होगी। इसके साथ ही साथ व्यक्तियों के आपसी संबंधों में तथा उनके परिणामस्वरुप होने वाली सामाजिक क्रियाओं में जितनी जटिलता होगी, समाज का स्वरुप भी उतना ही जटिल होगा। अपने जटिल स्वरुप के कारण ही आज समाज काफी विस्तृत हो गया है और उसके अनेक अंग हो गये हैं। ये सब मिलकर समाज के स्वरुप को निर्धारित करते हैं। अत कह सकते हैं कि समाज मनुष्यों का ही समूह नहीं होता, बल्कि वह उनके आपसी संबंधों का जाल होता है, जिसमें उनकी क्रिया-प्रतिक्रियाएं चलती रहती हैं।

---

[21] *समाजशास्त्र के मूल तत्व*, प्रो.सत्यव्रत सिधांतालंकार, पृष्ठ : 44.

[22] *साहित्य का समाजशास्त्र*, डॉ नगेन्द्र, पृष्ठ : 06.

3. साहित्य एवं समाज का अंत:संबंध

अब प्राय यह सर्वमान्य सिद्धांत हो गया है कि साहित्य एवं समाज में गहरा अंत:संबंध है। अब साहित्य को समाज से अलग करके नहीं देखा जा सकता है। साहित्य के सृजन एवं ग्रहण की समस्त प्रक्रिया समाज में ही घटित होती है। साहित्य एवं समाज एक-दूसरे से अविभाज्य रूप में संबद्ध हैं।

वस्तुतः साहित्य और समाज के संबंध की उपेक्षा नहीं की जा सकती, क्योंकि एक तो साहित्यकार समाज का ही एक सदस्य होता है, दूसरे साहित्य सृजन के लिए उसे जो भाव, विचार आदि प्राप्त होते हैं, वे सब समाज से ही आते हैं, तीसरे साहित्यकार साहित्य की रचना समाज के लिए ही करता है, उसके केंद्र में पाठक ही होता है और इस साहित्य के माध्यम से सामाजिक जीवन को प्रभावित करता है तथा साथ ही साथ मानव जीवन के विकास में संवृद्धि भी करता है।

मार्क्सवादी साहित्य-चिन्तक साहित्य का समाज से केवल संबंध ही स्थापित नहीं करते बल्कि वे साहित्य एवं कला का उद्गम स्थल भी सामाजिक और भौतिक जीवन को ही मानते हैं। प्रसिद्ध मार्क्सवादी विचारक क्रिस्टोफ़र कॉडवेल ने साहित्य और कलाओं के उद्भव पर चर्चा करते हुए लिखा है–"कला समाज से उसी प्रकार उत्पन्न होती है, जिस प्रकार सीपी से मोती उत्पन्न होता है।"[23] कभी कभी ऐसा भी होता है कि साहित्य में समाज सीधे तौर पर प्रत्यक्ष रूप से दिखाई नहीं पड़ता लेकिन वह उसमें अंतर्निहित जरुर होता है। ठीक उसी तरह कि जब वर्षा की बूंदें सूखी मिट्टी पर पड़ती हैं तो उसकी सुगंध हमारे मन-

[23] *Illusion and reality*,क्रिस्टोफ़र कॉडवेल, (भूमिका से), पृष्ठ : 14.

मस्तिष्क में फ़ैल जाती है, उसी प्रकार रचना को भी विभिन्न आयामों में इसी रूप में देखा जा सकता है। इस संबंध में आलोचक नामवर सिंह साहित्य का समाज से संबंध उस रूप में मानते हैं जिस रूप में फूल का घरती के साथ होता है। वे लिखते हैं–"समाज से साहित्य का संबंध कुछ-कुछ वैसा ही है, जो धरती से फूल का है। फूल धरती से उत्पन्न होता है, इसका मतलब यह नहीं है कि उसके दल, पात, पंखडी, वर्ण, ग्रन्थ आदि मिट्टी के हैं, कि उससे मिट्टी की सी सौंधी गंध आती है और रंग भी मटमैला होता है। धरती का रूप-रस फूलों में नया वर्ण, गंध उत्पन्न करता है । इसी तरह साहित्य में भी समाज ज्यों का त्यों नहीं झलकता, बल्कि रूपांतरित में अंतर्निहित रहता है।" [24]

जैसे जैसे साहित्य की दुनिया का विकास होता गया है, साहित्य में समाज की भूमिका पहले की अपेक्षा और बढती गयी है। आज के ज़माने में साहित्य की दुनिया केवल प्रेम और सौंदर्य के सहारे नहीं चल सकती बल्कि उसमें समाज की भूमिका अनिवार्य और व्यापक है। इस संबंध में आलोचक मैनेजर पाण्डेय लिखते हैं–"वैसे तो साहित्य की रचना और उसके बोध की प्रक्रिया कभी भी अपने सामाजिक सन्दर्भ से अप्रभावित नहीं रही है, लेकिन आधुनिक युग में साहित्य पर सामाजिक सन्दर्भ और राजनीतिक परिवेश का जितना व्यापक और निर्णायक प्रभाव पड़ रहा है उतना पहले कभी नहीं था। आज के ज़माने में साहित्य की दुनिया केवल सौंदर्य और प्रेम की एकांत साधना के सहारे नहीं चलती है। वह समाज के आर्थिक ढांचे, राजनीतिक परिवेश, सामाजिक संरचनाओं और सांस्कृतिक संस्थाओं से बहुत दूर तक प्रभावित होती है।"[25]

---

[24] *इतिहास और आलोचना*, नामवर सिंह, पृष्ठ : 146.

[25] *साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका,* डॉ.मैनेजर पाण्डेय, (भूमिका से), पृष्ठ : 11.

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि साहित्य का समाज से गहरा संबंध होता है। साहित्यकार समाज का ही एक अंग अथवा सदस्य होता है जो रचना के सृजन की सामग्री समाज से ही जुटाता है और उसी को अपनी कला के माध्यम से समर्पित कर देता है। अत: कहा जा सकता है कि साहित्य की रचना समाज द्वारा ही होती है। साहित्य का प्रभाव समाज पर ही पड़ता है। पहले की अपेक्षा आज साहित्य में समाज की भागीदारी कहीं अधिक दिखाई देने लगी है। यदि एक वाक्य में साहित्य और समाज के परस्पर संबंध को अभिव्यक्त किया जाये तो, कहा जा सकता है कि साहित्य का जन्म समाज से, समाज द्वारा, समाज के लिए होता है।

4. चेतना : अर्थ एवं परिभाषा

हिंदी शब्दकोश में 'चेतना' शब्द का अर्थ है–1. ज्ञानमूलक मनोवृति 2. बुद्धि, समझ 3. होश-हवास 4. स्मृति, याद।[26]

चेतना को परिभाषित करना कठिन है। सृष्टि में चेतना के दो रूप दिखाई पड़ते हैं - चेतन और अवचेतन। अवचेतन रूपों में संवेदना का अभाव होता है। मनुष्य एक चेतन प्राणी है। मानव मन की प्रमुख विशेषता उसकी चेतना ही है। मनोविज्ञान में चेतना शब्द का प्रयोग 'मन' के अंतर्गत किया गया है। मानस पूर्णतःचेतन होता है, क्योंकि चेतना मानस का स्वरुप है।मानस के तीन स्तर होते हैं–अचेतन, उपचेतन और चेतन।फ्रायड का मनोविश्लेषण शास्त्र अचेतन की कल्पना पर आधारित है। 'मनुष्य के सामान्य व्यवहार में व्यक्त होने वाले मानस का पक्ष चेतन है। इसमें वे अनुभव और व्यापार आते हैं, जिनका व्यक्ति को पूर्ण ज्ञान होता है। यही चेतना है। मन का प्रधान गुण चेतना ही है।'[27] दार्शनिक अर्थ में भी 'चेतना' शब्द का प्रयोग होता रहा है। यहाँ चेतना शब्द 'आत्मा' का समानार्थक हो जाता है किन्तु साहित्य और दर्शन में इसे प्राय 'चैतन्य' के रूप में उपयोग किया जाता रहा है।[28] इस अर्थ में भारतीय अध्यात्म में 'आत्मा' को चेतना का आधार माना गया है।अत: देखा जाये तो चेतना का मूल स्रोत मानव मन ही है जो निरंतर मननशील रहती है। यही भाषा के द्वारा विचार को रूप देती है। साहित्य का उद्भव मन और समाज से होता है। चेतना के माध्यम से अनुभूतियों का आकलन करके कवि या साहित्यकार सृजन करता है। इसलिए सामाजिक चेतना के धरातल पर साहित्य का विश्लेषण करना उपयोगी होता है।

---

[26] *हिंदी शब्दकोश,* डॉ. हरदेव बाहरी, पृष्ठ : 267.

[27] *हिंदी कविता में समकालीन चेतना,* डॉ.सुखबीर सिंह, पृष्ठ : 30-31.

[28] *हिंदी साहित्यकोश-भाग-1*, सं. धीरेन्द्र वर्मा, पृष्ठ : 319-320.

5. साहित्य में सामाजिक चेतना : महत्व एवं मानदंड

जन्म के साथ मनुष्य में चेतना का उदय होता है। यह चेतना व्यक्तिगत अनुभूतियों एवं अनुभवों से गुजरती हुई युग परिवेश को पहचानकर सामाजिक चेतना का रूप धारण करती है। प्राचीन साहित्यिक एवं सांस्कृतिक विकास पर जब हम दृष्टि डालते हैं तो हमें पता चलता है कि सामाजिक चेतना की अक्षुण धारा निरंतर गतिशील रही है। वेदों और उपनिषदों से लेकर रामायण और महाभारत में उस समय के सामाजिक जीवन का चित्र मिलता है। संस्कृत की विख्यात रचनाओं में आज भी तत्कालीन समाज जीवित है। हिंदी साहित्य के आदिकाल से लेकर आज तक के समकालीन साहित्य में भी सामाजिक चेतना विभिन्न पड़ावों से गुजरती हुई निरंतर प्रवाहमान है।

किसी भी रचना में निहित सामाजिक दृष्टि एवं साहित्यकार की सामाजिक चेतना का आज जो महत्व है उसे सिद्ध करने की जरुरत नहीं है। रचना की प्रभावशीलता ही नहीं, उसके स्थायित्व का आधार भी रचना में निहित साहित्यकार की प्रखर सामाजिक चेतना है। केवल व्यक्तिगत संवेदनाओं और प्रतिक्रियाओं से बुनी चेतना महत्व नहीं रखती बल्कि उसमें सामाजिकता भी होनी अति आवश्यक है। आज साहित्य के प्रति भोगवादी दृष्टिकोण के स्थान पर मानवीय संघर्ष में उसकी सहभागिता को अधिक महत्व दिया जाता है। प्रकृति-चित्रण की वे कवितायेँ जो सिर्फ सौंदर्य का आस्वाद देती हैं, सामाजिक दृष्टि से अप्रासंगिक ही लगती हैं। रह्स्यबोध की कवितायेँ पलायन कहलाती हैं क्योंकि वे वर्तमान मानवीय संकट की उपेक्षा कर जाती हैं। रचना में शक्ति तभी आती है जब वह सामान्य

जनता के विकास के अनुकूल हों। अनेक आलोचकों ने साहित्य में जिन प्रगतिशील मूल्यों की खोज की है वे सामाजिक चेतना से ही निर्मित हुए हैं।

साहित्य में समाज की छाया पड़ती है इस बात की खूब चर्चा हुई है। किन्तु कुछ लोग यह समझते हैं कि यह छाया अपने आप पड़ती है। डॉ. नामवर सिंह इस संबंध में लिखते हैं " समाज और साहित्य के बीच महत्वपूर्ण कड़ी है लेखक का व्यक्तित्व। साहित्य के रूप में समाज की जो छाया प्रकट होती है वह लेखक के व्यक्तित्व के ही माध्यम से आती है। साहित्य के निर्माण में इस बीच की कड़ी--लेखक का बहुत महत्व है और यह महत्व इस बात में है कि एक ओर इसका संबंध समाज से है तो दूसरी ओर साहित्य से, साहित्य रचना की प्रक्रिया में समाज, लेखक और साहित्य परस्पर एक दूसरे को इस तरह प्रभावित करते हैं कि इनमें से प्रत्येक क्रमशः परिवर्तित और विकसित होता रहता है—समाज से लेखक, लेखक से साहित्य, और साहित्य से पुनः समाज।"[29] उपर्युक्त स्थापना से लेखक के व्यक्तित्व का महत्व स्थापित होता है किन्तु जिस व्यक्तित्व को वे प्रतिपादित करते हैं वह अहंग्रस्त व्यक्तित्व से भिन्न है। वे व्यक्तित्व को लेखक की प्रतिभा का पर्याय नहीं मानते, न ही उसे अपने आप में पूर्ण मानते हैं। उसे अपने आप में पूर्ण मान लेने से व्यक्तित्व जड़ हो जाता है जबकि व्यक्तित्व तो विकासशील तत्त्व है। व्यक्तित्व समाज सापेक्ष है और उसका विकास सामाजिक संवंधों पर निर्भर करता है। सामाजिक संबंधों की उपेक्षा कर, अपने में सीमित रहकर सर्जक अपना विकास नहीं कर सकता और समाज को प्रभावित करने वाला साहित्य नहीं रच सकता।

[29] *इतिहास और आलोचना,* नामवर सिंह, पृष्ठ : 38.

यह निश्चित है कि सामाजिक चेतना की गहराई व्यक्तिगत प्रतिभा एवं कल्पना की उपज नहीं हो सकती। इसके लिए साहित्यकार की समाज-संपृक्ति आव्यश्यक है। लेकिन यह कई बातों पर निर्भर करती है। इसके लिए यह देखना आवश्यक है कि उसे वर्तमान सामाजिक व्यवस्था की सही-सही पहचान है या नहीं। उसमें समकालीन यथार्थ के विश्लेषण की पर्याप्त क्षमता है या नहीं और साथ ही उसकी विश्लेषण दृष्टि क्या और कैसी है यह भी देखना जरुरी है। समकालीन यथार्थ का विश्लेषण राजनीतिक समझ के बिना अधूरा रहेगा और यथार्थ की सही रूप में पहचान नहीं हो सकेगी इसलिए यह देखना जरुरी होगा कि उसकी राजनीतिक समझ कैसी है, कितनी गहरी है, उसकी राजनीतिक दृष्टि क्या है। इसके साथ ही मूल्य दृष्टि का भी प्रश्न जुड़ा हुआ है। साहित्यकार जिन मूल्यों का समर्थन करता है वह बहुत कुछ उसके विवेक पर निर्भर करता है और विवेक उसकी उस शक्ति पर जिससे वह समकालीन यथार्थ को पहचानता है, उसका विश्लेषण करता है।अत: स्पष्ट है कि सामाजिक चेतना के निर्माण में कई बातें सक्रिय रहती हैं।

सामान्यतः किसी रचनाकार की सामाजिक चेतना का आधार उसके यथार्थ बोध, समसामयिकता की पहचान, मूल्यबोध एवं राजनीतिक चेतना आदि को माना जा सकता है। किन्तु ये सारी बातें इतनी सरल नहीं हैं। इनके साथ दूसरे प्रश्न भी जुड़े हुए हैं जो रचनाकार की सामाजिक चेतना के लिए महत्वपूर्ण हैं। वास्तव में यथार्थ, समसामयिकता, मूल्य, राजनीति आदि के मूल्यांकन एवं उपयोग की दृष्टि एक ही नहीं होती है। किसी एक प्रश्न, विषय अथवा मानदंड़ को एक रचनाकार जिस रूप में देखता है दूसरा ठीक उसी रूप में नहीं देख पाता। उदाहरण के लिए इस सन्दर्भ में तारसप्तक के कवियों का समाज-चिंतन देखा जा सकता है। अज्ञेय की अवधारणा का यथार्थ वही नहीं है जो मुक्तिबोध का है।

विचारधारा गत इस भेद से मूल्यांकन की समस्या बढ़ जाती है। इसी तरह समीक्षा के मूल्य भी गिनकर निश्चित नहीं किये जा सकते हैं। कोई भी समीक्षक आधारपूर्वक यह नहीं कह सकता कि समीक्षा के वैध मूल्य इतने ही हैं और इनमें परिवर्तन की कोई गुंजाइश नहीं है। समय के साथ युग यथार्थ में परिवर्तन आ जाता है और उसके साथ ही समीक्षा के मूल्य भी बदल जाते हैं। इतना ही नहीं परिवेश बदलते ही मूल्य एक रहने पर भी मूल्य के प्रति दृष्टिकोण में अंतर आ जाता है। अनुभूति की ईमानदारी को काव्य के मूल्यांकन का एक आधार माना गया किन्तु एक पीढ़ी के लिए उसका जो अर्थ था दूसरी पीढ़ी के लिए उसका वही अर्थ नहीं रहा। डॉ. नामवर सिंह के अनुसार " कविता के पिछले पचास वर्षों के इतिहास से स्पष्ट है कि हर नए उन्मेष में ईमानदारी की आवाज है, किन्तु हर दौर की ईमानदारी की अपनी भाषा है। छायावाद की ईमानदारी 'आत्मानुभूति' है तो उत्तर छायावादी ईमानदारी 'नियत'; प्रगतिवाद की ईमानदारी का आधार 'वर्ग-चेतना' है तो प्रयोगशील नई कविता की ईमानदारी 'प्रमाणिक अनुभूति',और अब सातवें दशक में 'विसंगति-बोध' ही ईमानदारी का पर्याय है।"[30]

अत: स्पष्ट है कि एक ही मानदंड़ का अर्थ प्रत्येक पीढ़ी में बदल गया है।यही हल थोड़ी अधिक मात्र में समीक्षा के दूसरे मानदंडों का भी है। यही कारण है कि किसी भी रचनाकार का मूल्यांकन करते समय उसके अपने युग की सीमा और आज की दृष्टि दोनों का महत्व हो जाता है।

[30] *कविता के नए प्रतिमान,* नामवर सिंह, पृष्ठ : 35-36.

6. निष्कर्ष :

उपर्युक्त अध्याय में विभिन्न भारतीय और पाश्चात्य विद्वानों और चिंतको, साहित्यकारों के दृष्टिकोण के आधार पर 'साहित्य और समाज' के अर्थ और परिभाषा को समझते हुए इनके बीच पारस्परिक संबंध को समझने का प्रयास किया गया है तथा साथ ही साहित्य में सामाजिक चेतना के महत्व और मानदंडों की ओर संकेत करते हुए यही समझने का प्रयास किया गया है कि साहित्य की चेतना और सामाजिक चेतना में गहरा संबंध होता है । साहित्य सामाजिक चेतना की अभिव्यक्ति है इसलिए उसकी पृष्ठभूमि के रूप में सामाजिक परिवेश का बड़ा महत्व है । साथ ही परिवेश बदलते ही रचना निर्माण और समीक्षा के मूल्यों में बदलाव आ जाता है और साहित्य के मानदंड़ निश्चित नहीं रह पाते । अत: किसी भी रचनाकार का मूल्यांकन करते समय उसके अपने युग की सीमा और दृष्टि के महत्व को देखते हुए ही उसकी सामाजिक चेतना को परखना आवश्यक हो जाता है ।

तीसरा अध्याय

भगवत रावत के काव्य (प्रतिनिधि कविताएँ) में सामाजिक-चेतना

किसी भी कवि की सामाजिक चेतना को समझने के लिए उसके सामाजिक परिवेश को समझना अति आवश्यक होता है । कवि जिस समाज में रहा, जिया, पला, बढ़ा क्या उसकी प्रतिछाया उसकी कविता पर पड़ती है, वह कितना चिंतनशील है अपने आसपास के समाज को लेकर, क्या उसकी संवेदनाएं गहराई से अपने समाज से जुडी हैं और क्या अपने लोक, समाज में रहने वाले आम आदमी, स्त्री, बच्चे, दलित व उनके आपसी पारंपरिक मूल्य और सामाजिक रिश्तों का भाव उसके साहित्य में आ पाया है, अथवा छू कर मात्र ही अपने साहित्य की इतिश्री कर ली है ? इन सारे प्रश्नों को लेकर जब हम एक कवि अथवा उसके काव्य का अध्ययन करते हैं तो हम पातें हैं कि कोई कवि अथवा उसकी कविता सही रूप में कितनी प्रभावी और कहाँ ठहरती है ? समाज किसी एक वर्ग से नहीं बनता । उसमें सभी वर्गों की भागीदारी होती है । वही समाज एक आदर्श समाज कहलाता है जिसमें हर वर्ग का समान अधिकार हो । इसी प्रकार साहित्य में भी कोई एकांगी दृष्टिकोण नहीं होता, उसमें भी साहित्य के प्रत्येक रंग का मिला जुला होना आव्यश्यक है । सामाजिक चेतना के बारे में आलोचक नंदकिशोर नवल लिखते हैं “सामाजिकता या सामाजिक चेतना कोई संकीर्ण वस्तु नहीं है । वह मुट्ठी बांधकर और गला फाड़कर कर क्रांतिकारी नारा लगाने में ही नहीं है । वह अत्यंत व्यापक है, आकाश की तरह, जो हमारे भीतर भी है और बाहर भी । वस्तुतः समाज से बाहर कुछ भी नहीं है । यदि कोई ऐसी वस्तु हमें दिखलाई पड़ती है, तो यह हमारा दृष्टि-दोष है । स्वभावतः सामाजिकता के अनेक रूप

और रंग हैं। इस कारण उसे किसी सीमित परिभाषा में नहीं बाँधा जा सकता।"[31] भगवत रावत की कविताओं पर बात करने से पहले हमें इन्हीं तत्वों पर गौर करना चाहिए।

कविताओं से जुड़े कितने ही आन्दोलन और काल हमारे सामने रहे हैं। जहाँ अनेक कवि केवल प्राकृतिक सौंदर्य अथवा रूपसी के सौंदर्य में ही अपने काव्य को सीमित कर चुके हैं, अपने सामाजिक परिवेश से बेखबर केवल काल्पनिक दुनिया को ही रचना उनका कवि कर्म रहा है ऐसे में उनका काव्य केवल एक समय के फेर में ही अपने को खपा कर रह गया और वो अपनी सीमाओं को उस दौर से आगे नहीं बढ़ा पाए। हिंदी साहित्य में रीतिकाव्य को इस संदर्भ में देखा जा सकता है हालाँकि खोजने पर वहां भी सामाजिकता दिखाई पड़ जाती है किन्तु किंचित मात्र ही। साथ ही कुछ दौर ऐसे भी आये जहाँ इस तरह की कविताओं को व्यापक समर्थन और प्रोत्साहन भी मिला किन्तु समय के साथ वही कविताएँ जीवित रहीं जिनमें उनके सामाजिक परिवेश को गहरी संवेदना के साथ रचा गया। जिन कविताओं ने वास्तविक रूप में समाज की प्रगति की बात की, अपने समय के सामाजिक द्वंद्व को व्यक्त किया वही काल से मुठभेड़ करती हुई अपने को जल में उपरी सतह पर फैले तैलीय आवरण की तरह ऊपर तैराती रहीं और जिन्हें कालजयी होने का गौरव भी प्राप्त हुआ। निराला की 'तोड़ती पत्थर', मुक्तिबोध की 'अँधेरे में' जैसी कविताएँ न केवल अपने समय और समाज के द्वंद्व को व्यक्त करती हैं बल्कि काल से टकराती हुई आज भी जीवित हैं और आगे भी रहेंगी। इसी तरह ऐसे भी कवि हुए हैं जो अपने समाज और समय की चेतना से बेखबर रहे जिसके परिणाम स्वरुप समय के कालचक्र में ठीक उसी तरह गुम हो गये जिस प्रकार सूर्य निकलने के बाद आसमान के तारें विलुप्त हो जाते हैं।

---

[31] नंदकिशोर नवल, *हिंदी कविता : अभी, बिल्कुल अभी,* (2014), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली : 21.

यह बात सर्वमान्य है कि कोई भी कवि जब काव्य सृजन करता है तब वह अपनी संवेदनाओं को ही व्यक्त कर रहा होता है। वह सदैव मनुष्यता की ही बात कर रहा होता है। प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से उसका धेय मानवीय संवेदनाओं को ही उकेरना होता है किन्तु प्रश्न यह है कि उन मानवीय संवेदनाओं का विकास और सृजन कहाँ से और किस रूप में और कितनी मात्रा में हुआ है? इन संवेदनाओं के सृजन और विकास में राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और प्राकृतिक आदि वातावरण एवं परिस्थितियों का क्या योगदान रहा है, आदि भी देखना उतना ही महत्वपूर्ण होता है। पन्त के काव्य की जब बात की जाती है तब प्राकृतिक वातावरण का चित्र अनायास ही हमारे सामने आ जाता है। इसी तरह रघुवीर सहाय की राजनीतिक कविताओं का बिम्ब भी हमारे स्मृति पटल पर उभरने लगता है। इस प्रकार जब भी किसी कवि अथवा साहित्यकार को समझने का प्रयास किया जाता है तो उसकी साहित्यिक प्रवृतियों की ओर अनायास ही ध्यान चला जाता है। आचार्य शुक्ल ने तो इसे 'जनता की चित्तवृति का संचित प्रतिबिम्ब' कहते हुए जिस साहित्य स्वरुप के परिवर्तन की बात की वह इसी ओर संकेत करता है। अर्थात कवि अथवा साहित्यकार की प्रवृतियों का विकास उसके वातावरण अथवा परिवेश की ही देन होता है। स्पष्ट रूप में कहा जाये तो हम कह सकते हैं कि किसी भी साहित्यकार का जब हम मूल्याँकन करते हैं तब उसकी समाज सापेक्ष प्रवृतियों अथवा समाज से परिपोषित हुई चेतना को ही स्पष्ट करते हैं। समाज में आम आदमी, स्त्री, दलित, बच्चे और मानवीय मूल्यों आदि की वास्तविक स्थिति को किस रूप में अपने साहित्य में स्थान देता है इसी को देखना उस साहित्यिकार अथवा साहित्य की वास्तविक पहचान होती है। इस रूप में जब हम कवि भगवत रावत की बात करते हैं तो उनकी सामाजिक चेतना मुखर रूप में हमारे

सामने आती है। अपने काव्य में समाज के आम व्यक्ति को जिस गहरी संवेदना के साथ उन्होंने गढ़ा है, जहाँ समाज में हाशिये पर धकेल दिए गये बच्चों और स्त्रियों के प्रति गहन अनुभूति है, जहाँ इनके प्रति करुणा का आह्वाहन है और जहाँ कविता केवल समाज की उपरी सतह पर हमदर्दी सहानुभूति, दया, कृपाभाव पाने के लिए नहीं जुड़ती बल्कि उनके स्वाभिमान की बात करती हो, उनके हक़ की लड़ाई लड़ती हो तब निश्चित ही यह माना जायेगा कि उनकी संवेदनाओं का विकास उनकी अनुभूतिक सामाजिक चेतना से ही हुआ है। स्वयं भगवत रावत का कथन है "मैं यह भी मानता हूँ कि कोई भी कविता काल निरपेक्ष नहीं होती। वह अपने समय में होती है और अपने समय के निशान उस पर मौजूद होते हैं। अपने समय की घटनाओं, दुर्घटनाओं, छल, प्रपंच, पाखण्ड, ओम, करुणा, संहार, षड्यंत्र, राजनीति आदि से विमुख होकर आज की कविता संभव नहीं है। इसलिए आज की कविता में समाज और उसका यथार्थ कविता के अनुषंग नहीं, वे उसके काव्य का मुख्य आधार हैं। यही कारण है कि आज की कविता मात्र संवेदना ही नहीं जगाती, वह आँखे भी खोलती है। वह करुणा और प्रेम में ही नहीं डूबाती, व्याकुल भी बनाती है इसलिए वह समाज की सामूहिक चेतना की रचनात्मकता का प्रतीक है।"[32] कवि ने समाज के जिस यथार्थ की बात की है उसे बखूबी अपने काव्य में भी स्थान दिया है। भगवत रावत के काव्य में भारतीय जीवन के सामाजिक यथार्थ के पूरे ताने-बाने के बारे में विष्णु खरे लिखते है "भगवत रावत की ये कविताएँ भारतीय जीवन के ऐसे कई चित्र हिंदी कविता में लाती हैं

[32] ए.अरविंदाक्षन (2011), 'कविता में लोक और क्लासिकी का विलयन', लमही, वर्ष 31 : अंक 31 (जन-मार्च) : 16.

जो शायद पहले कभी देखे नहीं गए ।"[33]उसी भारतीय जीवन को लेकर हम उनकी सामाजिक चेतना को कुछ मुख्य बिन्दुओं के अंतर्गत समझने का प्रयास कर सकते हैं।

[33] भगवत रावत, *सच पूछो तो,* (1996), राधाकृष्ण, नई दिल्ली : फ्लैप से साभार

1. आम आदमी के प्रति चेतना

भगवत रावत के काव्य में आम आदमी के प्रति संवेदनशीलता बड़ी ही गहराई से व्यक्त हुई है। इसके पीछे खुद उनका अपना साधारण जीवन ही रहा है। एक साधारण गरीब परिवार में जन्म, जहाँ बचपन से बड़े होने तक का उनका जीवन इन्हीं आम लोगों के बीच में ही गुजरा है। यही सारे लोग भगवत रावत की कविताओं में स्थान पाते रहे हैं। इन्हीं आम आदमियों के बीच रहकर ही उनके काव्य का विकास हुआ है। किसी बिन बुलाये मेंहमान कि तरह ये सारे लोग अनायास ही उनके काव्य में आ धमकते हैं। भगवत रावत के ही शब्दों में "वे सारे लोग अगर मेरी कविताओं में दर्ज हैं तो इसलिए कि मैं उनके प्रति संवेदनशील हूँ-इसलिए कि वही मेरा बचपन है और वही मेरी दुनिया है जिसने मुझे बनाया और पढ़ लिखकर बेहतर तथा कथित सभ्य आदमी बनकर मैं उन्हें वहीं छोड़कर बाहर निकल आया। पर वे सब लोग तो मेरा पीछा नहीं छोड़ते मैं लिख लिखकर उनसे पीछा छुड़ाता हूँ। लेकिन वे बार बार मेरे अन्दर बैठे मुझे चिढाते रहते हैं।"[34] इसलिए भगवत रावत की कविताओं को उनके जीवन से अलग करके नहीं आँका जा सकता। वह बार-बार अपनी कविताओं में आम आदमी पर ही आना चाहते हैं-

" दरअसल मैं अब
फूल पत्ती दरख़्त पहाड़ नदियाँ
जंगल समुद्र / यहाँ तक कि
कविताओं से हटकर / सीधा

[34]भगवत रावत : प्रतिनिधि कविताएँ, (2014) अरविन्द त्रिपाठी (सम्पा), भूमिका से, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली : 07.

आदमी पर आना चाहता हूँ। "[35]

छठे दशक में लिखी गयी भगवत रावत की महत्वपूर्ण कविता 'आदमी पर' इस बात की ओर संकेत करती है कि वह युग बीत चुका है जब कविताएँ वास्तविक संसार से अलग किसी प्राकृतिक अथवा मानवीय रूप के सौंदर्य के वर्णन तक ही सीमित थीं। उनकी चिंता यहाँ इसी बात को लेकर है कि समाज में हाशिये पर चले गये आम आदमी को आज कविता का विषय बनाना जरुरी है। जिस समाज में एक कवि की चेतना निरंतर विकसित होती है वह उसी समाज के आम आदमी को अपने काव्य का विषय बनाये क्योंकि केवल काल्पनिक सौंदर्य ही एक कवि का धेय नहीं होना चाहिए। भगवत की सामाजिक चेतना उनके काव्य कर्म को निरंतर उस हाशिये के व्यक्ति की ओर धकेलती रही है जिसे उन्होंने अपने ही बीच रहते पाया है। यहाँ वे उस आदमी की विडम्बनाओं और दुखों से गहन रूप से परिचित दिखाई पड़ते हैं जो हर सुबह रोजी रोटी की तलाश में निकल पड़ता है। जिसके पास होती हैं केवल चार रुखी रोटियां जिन्हें वह प्याज और हरी मिर्च के साथ उसी स्वाद के साथ खाता है जो किन्हीं मंहगे होटलों के भोजन में भी नहीं होता। जो गाँव-गाँव शहर-शहर रोजगार की तलाश में भटक रहा है और जिसकी यातना का कोई अंत नहीं दिखाई पड़ता है। इस संबंध में वेद प्रकाश लिखते हैं " भगवत रावत का यह आदमी, जिस पर वे सीधे आना चाहते हैं, भारत का आम जन है। यह वही सामान्य मनुष्य है, जो स्वाधीनता के बाद गाँव छोड़कर शहरों और कस्बों में आया है। इसकी जीवन-स्थितियों की यातना के अनेक बिम्ब इनकी कविताओं में देखने को मिलते हैं।"[36]

[35] भगवत रावत : प्रतिनिधि कविताएँ, (2014) अरविन्द त्रिपाठी (सम्पा), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली : 22.
[36] वेद प्रकाश (2012), 'सकर्मक संवेदन के कवि भगवत रावत', वर्तमान साहित्य, वर्ष 28 : (अगस्त) : 09.

भगवत रावत एक ऐसे कवि हैं जिन्होंने मार्क्सवादी विचारधारा को न केवल गहराई से जाना है बल्कि अपनी कविताओं में उसे महत्वपूर्ण स्थान भी दिया है। इनकी विचारधारा केवल ओढ़ी हुई विचारधारा नहीं है, वह अपने समाज की गहन अनुभूति से उपजी और पोषित हुई विचारधारा है जिसमें यदि समय के साथ कोई विकार उत्पन्न हो जाये तो उसे त्यागने में भी इन्हें कोई परहेज नहीं है। वे कहते भी हैं " इसीलिए मेरी कविता में वैचारिकता ऊपर-ऊपर तैरती नहीं दिखाई दे सकती । उनमें जीवन का अनुभव ही प्रमुख है और अनुभवों के लिए सबसे पहले आपका घर परिवार होता है, मोहल्ला होता है, आसपास का समाज होता है । सारी दुनिया को आपको इन्हीं से जानना-समझना होता है।"[37]भगवत रावत ने आम आदमी की आवाज को बड़ी ही सरलता और सहजता के साथ अपनी कविताओं में स्थान दिया है। इनके यहाँ किसी क्रांति की अनुगूंज नहीं है बल्कि करुणा के लिबास में लिपटी एक सहज स्थिति है। कवि नागार्जुन और त्रिलोचन ने अपनी कविताओं में जिस तरह सहज एवं सरल अनुभूति को स्थान दिया उसी का विकास हम भगवत रावत की कविताओं में देख सकते हैं। वह जिस तरह एक साधारण व्यक्ति की स्थिति को बयाँ करते हैं वह बहुत ही सहज रूप में हमारे सामने आती है। आम आदमी की नैसर्गिक स्थिति को बिना किसी लाग-लपेट के बयाँ करना इनकी कविता की महत्वपूर्ण विशेषता है ।'अतिथि कथा' शीर्षक कविता में कवि ने आम आदमी की स्थिति और उसके आपसी सामाजिक रिश्ते-नातों की जो बानगी बयाँ की है वह बहुत ही सहज और सरल तरीके से ही सामने आई है। यह वही आम आदमी है जो दिन-रात मेंहनत मजदूरी करके अपना परिवार चलाता है और जो समाज में रहता हुआ अपने सामाजिक रिश्ते-नातों को भी निभाता चला

[37] भगवत रावत : प्रतिनिधि कविताएँ, (2014) अरविन्द त्रिपाठी (सम्पा), भूमिका से, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली : 11.

जाता है। उसके पास खाने रहने के लिए भले कुछ न हो किन्तु सामाजिक दायित्वों के लिए उसका हृदय मनुष्यता से परिपूर्ण अवश्य रहता है। वह भौतिक साधनों से भले ही किसी का सत्कार न कर पाए किन्तु अपनी आत्मीयता एवं करुणा से सत्कार करना अवश्य जानता है। इस कविता में कल्लू और रामा अचानक पधारे अपने समधी का सत्कार किन्हीं लबालब भौतिक साधनों से नहीं बल्कि आदर और आत्मीयता से ही करते हैं। यहाँ उनके लिए बैठने अथवा खाने-पीने के लिए साधन नहीं हैं किन्तु मन में आदर भरपूर है -

" फिर कलारी के पास चट्टान पर बैठे तीनो जने
बैठ गए आस-पास दोनों घर दोनों गाँव
दोनों परिवार / दोनों समधी आमने-सामने
और लाज-शरम की आड़ में / बगल की तरफ रामा
कल्लू ने बीडी सुलगायी
दाहिनी कोहनी को हाथ लगा आदर से
जजमान को गहाई "[38]

भगवत रावत आम आदमी की ज़िन्दगी के पहलू को बड़ी ही सहज और साधारण स्थिति में इसी प्रकार बयाँ करते हैं। उनकी जरूरतों को बड़ी ही गहराई से व्यक्त कर जाते हैं। वास्तव में इस दृष्टि से देखा जाये तो वे लोक से बहुत ही गहरे से जुड़ते चले जाते हैं। समाज के साधारण से लेकर खास व्यक्ति तक वह उतनी ही आत्मीयता से जुड़े रहे हैं। इसी आत्मिक अनुभूति ने उनकी कविता को गढ़ा है। संपादक और समीक्षक अरविन्द त्रिपाठी लिखते हैं- "भगवत को सबसे ज्यादा विश्वास 'लोक' में है। 'लोक' से सामान्य कवियों की

[38] भगवत रावत : प्रतिनिधि कविताएँ, (2014) अरविन्द त्रिपाठी (सम्पा), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली : 85.

तरह उनका महज जुडाव का मामला नहीं है बल्कि उनकी कविताओं से गुजरते हुए आपको लगेगा कि इस कवि का लोक से नाभिनाल का रिश्ता है । बिना लोक के उसकी कोई अहमियत नहीं, बिसात नहीं, कोई पहचान नहीं, कायदे से देखा जाये तो भगवत की कविता की मूल पहचान ही लोक अभिव्यक्ति है ।"[39] इस लोक से जुड़े हर आम आदमी से उनका गहरा रिश्ता है । 'प्याज की एक गांठ' शीर्षक कविता में इस आत्मीय रिश्ते को भगवत रावत ने बड़े ही सहज रूप में व्यक्त किया है । महंगाई की मार ने हर आम आदमी को प्रभावित किया है। वह एक-एक पैसे का हिसाब रखने को मजबूर हो गया है। यहाँ तक कि उसके मानवीय मूल्य भी प्रभावित हुए बिना नहीं रह सके हैं। किन्तु भगवत रावत के यहाँ इन सबके बावजूद मानवीयता अभी भी बची हुई है । महंगाई ने एक ओर जहाँ प्याज बेचने वाले बशीर भाई को एकदम बराबर तौलने पर मजबूर कर दिया है वहीं ग्राहक के रूप में कवि को भी अपनी जरुरतों में कमी करने को मजबूर किया है किन्तु प्याज कि उस एक गांठ को ग्राहक के हिस्से में डालकर बशीर भाई ने उन मानवीय रिश्तों को अभी बचा लिया है –

"प्याज की एक गांठ / और उतारें या न उतारें
इस सोच में उनका हाथ
ग्राहक से रिश्ता तय करता सा
हवा में रुका / और आख़िरकार
बशीर भाई जीत गये "[40]

[39] भगवत रावत : प्रतिनिधि कविताएँ, (2014) अरविन्द त्रिपाठी (सम्पा), भूमिका से, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली : 08.

[40] भगवत रावत : प्रतिनिधि कविताएँ, (2014) अरविन्द त्रिपाठी (सम्पा), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली : 42.

भगवत रावत ने जहाँ छोटी कविताएँ लिखी हैं वहीं कुछ लम्बी कविताओं का भी सृजन किया है। इन सब कविताओं में उन्होंने बड़ी ही सादगी से आम आदमी की स्थिति को व्यक्त किया है । लमही पत्रिका के सम्पादकीय में संपादक विजय राय लिखते हैं- "उनकी लम्बी कविताओं में जो एक खास तरह की सादगी है वह जहाँ कविता को संप्रेषणीय बनाती है वहीं उन्हें वह आम आदमी से जोड़ती भी है।"[41] भगवत रावत का मानना है कि आम आदमी को जानने के लिए वास्तव में उससे जुड़ना अनिवार्य है। समाज में इनके बीच रहकर ही इन्हें भली-भांति जाना जा सकता है । बहुत से कवियों ने आम आदमी को लेकर कविताएँ लिखीं हैं किन्तु वो न केवल सतही मालूम होती हैं बल्कि उनमें आत्मीयता की भी उतनी ही कमी महसूस होती है। भगवत रावत के यहाँ ऐसा नहीं लगता क्योंकि इन्होने स्वयं उस आम आदमी के जीवन को जिया है और उन्हीं को अपनी कविता में स्वर दिया है। भगवत रावत अपने साधारण जीवन के बारे में लिखते हैं "जीवन में कोई बहुत महान या ऐसी उल्लेखनीय घटना घटी नहीं, जिसे जान समझकर आप आह या वाह कर सकें। मेरा जीवन तो एक सीधी पटरी पर चलने वाला सामान्य जीवन रहा।"[42] वे उन भद्रजनों, साहित्यकारों, कवियों से भी यही अपील करते नजर आते हैं कि वे आमजन की स्थिति को केवल सतही रूप में न देखें, केवल आसमानी निगाह डालने, फोरी बहस करने से उसकी सही स्थिति का जायजा नहीं लिया जा सकता बल्कि उन्हीं की दुनिया में उतरकर उन्हें ठोस और विस्तृत रूप में देखने की कोशिश करनी होगी –

" उस आदमी से कहो

[41] विजय राय (2011), 'सम्पादकीय से', *लमही,* वर्ष 31 : अंक 31 (जन-मार्च) : 05.

[42] भगवत रावत (2011), 'कविता के जनतंत्र की नागरिकता', *लमही*, वर्ष 31 : अंक 31 (जन-मार्च) : 151.

कि वह नीचे उतर आये

इतने ऊपर से / चीजों के कद

छोटे दिखने लगते हैं।"[43]

भगवत रावत उन्हीं आम आदमियों की तरह हैं जो रोजमर्रा के कामों में अपना जीवन ख़ुशी-ख़ुशी व्यतीत करते हैं। इसी मायने में वे एक विशिष्ठ कवि न होकर एक साधारण से कवि की हैशियत से उन्हीं रोजमर्रा के कामों पर भी उसी तरह कविता लिख देते हैं। संवाद के लहजे में उनकी कविता इन्हीं रोजमर्रा के कामों को बड़ी सादगी के साथ व्यक्त करती हैं। वास्तव में देखा जाये तो उनकी कविता आम आदमी से इस हद तक जुड़ी हुई हैं कि यदि हम आम आदमी की इन रोजमर्रा की स्थितियों से वाकिफ नहीं हैं तो हम इनके आत्मीय नहीं बन सकते। मसलन रविवार अथवा छुट्टी के दिन बाज़ार से सब्जी-भाजी खरीदने पैदल निकलना, बाज़ार में सब्जी-भाजी बेचने वालों से थोड़े से पैसों को लेकर मोल-भाव करना, उनसे मिन्नतें करना, हाल-चाल पूछना, भीड़ भरे माहौल में धूल-धूसरित होकर निकलना आदि ऐसे रोजमर्रा के छोटे-मोटे काम हो सकते हैं जिन्हें आम आदमी हर रोज की अपनी ज़िन्दगी में जीता है। ऐसे ही साधारण से दिखने वाले जन-जीवन के क्रियाकलापों को भगवत रावत ने अपनी कविताओं का विषय बनाया है जिनमें कोई विशिष्ट काल्पनिक सौंदर्य न होकर वही साधारण सी स्थिति अपने मानवीय और आत्मीय रूप में व्यक्त होती है। इसलिए यदि हम इस तरह की स्थिति से वास्तव में अनजान हैं तो कवि के ही शब्दों में –

" तो फिर भाई साहब / आप हमारे भाई नहीं

[43] *भगवत रावत : प्रतिनिधि कविताएँ* (2014) अरविन्द त्रिपाठी (सम्पा), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली : 36.

सिर्फ साहब हो सकते हैं

हमारे हफ्ते के / सारे दिन हो सकते हैं

हमारा इतवार / नहीं हो सकते।"[44]

भगवत रावत ने विशिष्ट और आम जन-जीवन बहुत ही पास से देखा है। गाँव और नगरीय जीवन को स्वयं अनुभूत किया है। वे जीवन के दोनों ही पहलुओं से भली-भांति परिचित हैं। वास्तव में आम आदमी की स्थिति से ऊपर जहाँ भी उन्हें कोई परिस्थिति नजर आती है वह उन्हें एकदम बनावटी लगने लगती है, उससे भय सा लगने लगता है। विशिष्ट घर की साफ-सुथरी स्थिति जहाँ हर चीज करीने से व्यवस्थित है, में जाने पर कवि को जिस भय की अनुभूति होती है वह इसलिए है क्योंकि बहुत ही साधारण और गरीब घर में रहकर उन्होंने बहुत ही संघर्ष झेला है। गरीब और आम आदमी के जीवन की छाया हमेंशा उनके साथ रही है। इसी सन्दर्भ में भगवत रावत की कविताओं की विशेषताओं के बारे में अरुण कमल लिखते हैं " भगवत रावत की सर्वोतम कविताएँ गरीब लोगों के बारे में हैं, सताये हुए कमजोर लोगों के बारे में। उन्हीं के पक्ष में, उन्हीं की ओर से।"[45] इस जीवन में हमेंशा ही उन्होंने अस्त-व्यस्त स्थितियों को देखा है। जहाँ केवल दो जून की रोटी की व्यवस्था में ही आदमी का जीवन गुजर जाता है। उसके पास धन और समय का हमेंशा अभाव पाया जाता है किन्तु दूसरों के प्रति प्रेम भरा स्नेहपूर्ण आत्मीय भाव उतनी ही मात्रा में मिलता है। उसके घर में भौतिक साधनों की कमी भले ही हो किन्तु उसका हृदय निस्वार्थ प्रेम से प्रगाढ़ होता है। उसमें कहीं भी छल-कपट की भावना नहीं मिलती। वह सबसे बिना किसी संकोच के हृदय से बात करता है। और इसी मद में जब वह किसी विशिष्ट भद्रजन के घर में अक्सर

---

[44] *भगवत रावत : प्रतिनिधि कविताएँ* (2014) अरविन्द त्रिपाठी (सम्पा), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली : 47.

[45] अरुण कमल (2000), 'भगवत रावत की कविता', *वसुधा,* : अंक48 (जन-जून) : 113.

प्रवेश करता है तो उसे सब कुछ ऊपर से ओढा हुआ मालूम होता है जहाँ मुंह पर मीठे बोल केवल उपरी दिखावा हैं, जहाँ हर शब्द में बनावटीपन झलकता है और जहाँ भौतिकता ने अपने पैर फैला रखे हैं या जहाँ व्यवहार को पहले से ही बनावटी सांचे में ढालकर तैयार कर रखा है। कवि की चिंता ऐसे में यही होती है कि जिस स्नेहपूर्ण व्यवहार को वह चाहता है जिसमें बाहरी बनावट न होकर आंतरिक प्रेम हो, इस तरह के विशिष्ट घरों में मिलना मुश्किल है। इसलिए अनजाने ही इस तरह के माहौल से उसे भय सा लगने लगता है जो एक कोमल हृदय निस्वार्थ व्यवहार वाले व्यक्ति के लिए स्वाभाविक भी है –

" सभी कुछ सजा-सजा / बोली बानी मोहक
अक्षर-अक्षर सधा-सधा / सब कुछ सोचा-समझा
सब पहले से तय / ऐसे घर में
जाने क्यों लगता है भय।"[46]

भगवत रावत ने आम आदमी की समस्याओं को लेकर कई कविताएँ लिखी हैं। इनके यहाँ मजदूरी में दिन-रात पिसता आम आदमी है तो साहूकार के यहाँ कर्ज से दबा किसान भी है, भ्रष्टाचार करते अफसर हैं तो दरिद्रता की मार झेलते स्वाभिमानी लोग भी हैं। मंहगाई की मार से अस्त-व्यस्त बेहाल जीवन है तो दिन-दूनी रात-चौगुनी फलती-फूलती कुकर्म की कमाई भी है। इस संबंध में आलोचक विश्वनाथ त्रिपाठी लिखते हैं " भगवत रावत की कविताओं में समकालीन जीवन के विविध रंग है। इनकी कविताओं में मार्मिक कथा-रस है ये कविताएँ नाटकीय स्थितियों और मोड़ो से रच-बसी हैं।...निम्न और निम्न

[46] *भगवत रावत : प्रतिनिधि कविताएँ* (2014) अरविन्द त्रिपाठी (सम्पा), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली : 51.

मध्यवर्ग से प्रेम और उनसे आत्मीयता उनकी कविताओं का आधार है।"[47] अर्थात कवि ने आम आदमी को प्रभावित करने वाले हर कारक, हर तत्त्व को अपनी कविता का विषय बनाया है। उन्होंने आम आदमी की हर स्थिति का जायजा बखूबी लिया है। एक तरफ जहाँ धन-दौलत के मद में अघाए लोग हैं तो दूसरी ओर ऐसे भी लोग हैं जिनके चूल्हे कई दिनों तक जले ही नहीं। जहाँ परिस्थितियों ने दमन की ऐसी चक्की चलाई है कि सब कुछ को पीस दिया है। जहाँ जलने के लिए केवल चूल्हा ही नहीं है लेकिन सारा घर जल रहा है। लोगों की आँखों से जहाँ अब रोया नहीं जाता। उनकी आँखों से आंसू सूख चुके हैं। जिनके पास अब खोने के लिए भी कुछ नहीं बचा है। और जिनके शरीर अब बस बेजान हड्डियों का ढांचा भर रह गये हैं। ऐसी परिस्थितियों में पिसता आम आदमी जब भगवत रावत की कविताओं में आता है तब करुणा की सचमुच ही कमी पड़ती दिखाई देती है –

" सूरज के ताप में कहीं कोई कमी नहीं
न चंद्रमा की ठंडक में
लेकिन हवा और पानी में जरुर कुछ ऐसा हुआ है
कि दुनिया में / करुणा की कमी पड़ गई है।"[48]

भगवत रावत की कविताओं में उन लोगों ने भी अपनी जगह बनाई है जो बड़े-बड़े शहरों से मेंहनत-मजदूरी करके अपने गाँव घर लौट रहे हैं। जिनके अपने पशु-पक्षी हैं, खेत खलिहान हैं, नदियाँ, कुँए-बावड़ियाँ, पहाड़, जंगल, मैदान, रेगिस्तान हैं, जिनकी अपनी बोली-बानियाँ, पहनावें, खानपान, रीतिरिवाज हैं। जिनके पास एशों-आराम के भौतिक

[47] विश्वनाथ त्रिपाठी (2012), 'भगवत रावत का जाना या आगमन की आशा', *वर्तमान साहित्य,* वर्ष 28 : (अगस्त) : 07.

[48] *भगवत रावत : प्रतिनिधि कविताएँ* (2014) अरविन्द त्रिपाठी (सम्पा), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली : 91.

साधनों का तो अभाव है लेकिन अपनी गाँठ में इन सब के प्रति अपार लगाव रचा बसा है। वे हजारों मील का सफ़र करते हुए भी इन सब के प्रति अपना मोह नहीं छोड़ पाए हैं। भगवत रावत ने जिन लोगों के लिए मर-मर कर लिखा है वे यही आम आदमी हैं। इनके लिए उनके मन में बेचैनी है, अकुलाहट है। मुक्तिबोध ने जिस बेहतरी की कल्पना की थी तथा जिस दुनिया को साफ करने के लिए 'मेहतर' की मांग की थी, उसी 'मेहतर' के लिए भगवत रावत ने भी अपने काव्य में उसका आह्वाहन किया है। अक्सर इनकी आँख से जो नींद गायब हो जाती है वह किसी बीमारी अथवा किसी भौतिक चीज की कमी के कारण नहीं अपितु आमजन के लिए उनकी चिंता और बेचैनी का ही परिणाम है। 'नींद क्यों रात भर आती नहीं' शीर्षक कविता में उनकी यह बेचैनी स्पष्ट जाहिर होती है। आखिर क्या कारण है कि कवि के पास हर तरह के सुख साधन होने के बावजूद भी उसकी आँखों से नींद गायब है। आज वह आजाद देश में जी रहा है, उसके पास अच्छा घर है, सोने के लिए ठीक-ठाक बिस्तर है, भूख की कोई समस्या नहीं है, किसी प्रकार की शारीरिक व्याधि भी नहीं है, न ही उसने ऐसा कोई काम किया है जो किसी को उससे कोई इर्ष्या अथवा द्वेष हो यानि कहने का अर्थ यही है कि शायद ऐसा कोई कारण नहीं है कि उसे किसी वजह से नींद न आये लेकिन सच कहा जाये तो उसके अंतर में आमजन के लिए जो पीड़ा है, जो बेचैनी है वही उसके नींद न आने का कारण है। ऐसे विरले ही लोग होते हैं जो दूसरों की चिंता में घुले जाते हैं। जहाँ एक तरफ इस युग में अधिक से अधिक भौतिक साधनों को जुटाने और लूटने की होड़ मची है, अपने सुख में निरंतर वृद्धि करने की मारा-मारी मची है वहीं दुनिया की इस भीड़ से निकलकर भगवत रावत जैसे कवि ही दूसरों के लिए चिंता करते दिखाई देते

हैं। भले ही शारीरिक रूप से इन्होने उनके कार्यों को न किया हो लेकिन अपनी कविताओं के माध्यम से वो उन्हें बतलाना चाहते हैं कि मेरी पीड़ा और बेचैनी इन्हीं लोगों के जैसी है

"हमेंशा देखता रहा रेल की खिड़की से
उन्हें बैलों के साथ जुते / अपना बदन तोड़ते
हंसिये की तेज धार से / अपनी उम्र काटते
वे तमाम लोग / जिनके बारे में मैंने लिखी कविता
कैसे बतलाऊं उन्हें।"[49]

भगवत रावत ने हमेंशा उस भ्रम को तोड़ने की कोशिश की है जो उन्हें आम लोगों, उनके दुःख-दर्दों, उनकी वास्तविक स्थिति, तकलीफों से दूर ले जाने की कोशिश करता है। समाज की वास्तविक स्थिति को झुठलाकर आम आदमी की खुशहाली के भले ही कितने गीत गाये जाएँ, उनकी उन्नति और अच्छे दिनों के चाहे कितने ही सपने दिखाए जाएँ किन्तु इसके पीछे की जो सच्चाई रही है भगवत रावत की आँखों ने उसे बखूबी पहचाना है। 'समुद्र के बारे में' शीर्षक कविता सांकेतिक रूप से यही कहती दिखाई पड़ती है। फैले आसमान की तरह खुशहाली का ढिंढोरा पीटने वाले लोग सत्ता के मद में केवल भ्रम फ़ैलाने का काम ही करते हैं। भ्रम के बादलों से वे सूर्य के तेज को ढकने की कोशिश करते हैं किन्तु बादल हमेंशा इस तेज को ढक नहीं पाते। उसी तरह एक बुद्धिजीवी, साहित्यकार या कवि उस भ्रम के पीछे की वास्तविक स्थिति को पहचान लेता है। वह जान जाता है कि इस समुद्र का अथाह फैलाव और गहराई केवल जादुई है, भ्रम है। अर्थात प्रतीकात्मक रूप में देखें तो आम आदमी की वास्तविक स्थिति कुछ और ही है, वह आज भी नहीं बदली है लेकिन

[49] *भगवत रावत : प्रतिनिधि कविताएँ* (2014) अरविन्द त्रिपाठी (सम्पा), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली : 37.

आज भी यही दिखाने की कोशिश की जा रही है। अत: भगवत रावत ने आम आदमी को लेकर जिन कविताओं का सृजन किया उनमें समाज में आम रिश्तों, स्त्रियों, बच्चों, दलितों, आदि सभी की पीड़ा को शामिल किया है। इन सभी को लेकर बहुत से कवियों ने अनेक कविताओं का सृजन किया लेकिन वह गहन अनुभूति से आत्मसात किया दु:ख कम उपरी रंग-रोगन किया दु:ख ज्यादा नजर आता है। वह बाज़ार की वस्तुओं की तरह खरीदा हुआ सा महसूस होता है जिसे मांज कर सुरुचि संपन्न बना कला के रूप में ढालकर पेश करने की कोशिश की जाती है। भगवत रावत के ही शब्दों में –

"अम्मा अब तो दु:ख / बाज़ार में भी बिकता है
दु:ख के खरीदार भी बहुत हो गये आजकल
बड़े-बड़े ज्ञानी-हमानी तक ले जाते हैं...
फिर थोडा कांट-छांट कर
रंग रोगन से उसकी चुभती सी आकृति को
दर्शनीय मुद्रा देते हैं।"[50]

वास्तव में देखा जाये तो भगवत के यहाँ वही आम लोग नजर आते हैं जो रोज कुआँ खोदते हैं और रोज पानी पीते हैं। इनके दु:ख दर्द बनावटी नहीं हैं। उन पर जो भी कवि ने लिखा वह गहन अनुभूति से बिना किसी स्वार्थ के लिखा है। अपने और अपने आसपास के जीवन से जुड़े दुखों के बारे में कवि ने जब भी लिखना चाहा वह किसी स्वार्थवश नहीं बल्कि गहरी संवेदना से अभिभूत होकर ही लिखा है। इस सन्दर्भ में संपादक विजय राय लिखते हैं "भगवत रावत ने अपनी सृजन क्षमता का विकास स्वयं बहुत मेंहनत मशक्कत

[50] *भगवत रावत : प्रतिनिधि कविताएँ* (2014) अरविन्द त्रिपाठी (सम्पा), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली : 72.

और संघर्ष से किया है। गहन जीवनावलोकन, अध्ययन, मनन, चिंतन, विमर्श और अपने इर्द-गिर्द से उनकी अपनी दृष्टि और शैली विकसित हुई है। वे अपनी लोक चेतना से अपनी भाषा और अपना मुहावरा स्वयं गढ़ते हैं जो उनकी निजता की पहचान है। वे सचमुच उत्तरशती के एक महत्वपूर्ण ही नहीं बल्कि समर्थ कवि हैं जो निर्धारित व्याकरण से बाहर निकलकर अपने जीवनानुभवों, सामाजिक चिंताओं और मानवीय सरोकारों को अत्यंत सरलता से व्यक्त करते हैं।"[51] अत: कवि को इसलिए हमेंशा एक अज्ञात खटका (डर) रहता है कि कहीं बनावटीपन का शिकार न हो जाऊं। 'अम्मा से बातें' शीर्षक कविता में भगवत रावत इस डर को कुछ यूँ व्यक्त करते हैं-

"लिखने बैठा जब भी / ऐसा लगा की उन पर लिख कर
उन्हें बेचने की कोशिश तो नहीं कर रहा
उनकी तकलीफों को मढवाकर किसी फ्रेम में
उस पर अपना नाम लिखाने की / कोशिश तो नहीं कर रहा।"[52]

भगवत रावत ने हमेंशा ही आम आदमी की लड़ाई, उसके संघर्ष को स्वर देने की कोशिश की है। ऐसे समय जब संघर्षशील आदमी, कलाकारों को गिन गिन कर निशाना बनाया जा रहा हो, जहाँ सत्ता द्वारा बिना किसी जुर्म के उसे सलाखों के पीछे धकेल दिया जाता रहा हो और जहाँ बीच सड़क पर सबके सामने उसे मार दिया जाता हो, ऐसे समय में उसके संघर्षों को स्वर देना किसी स्वार्थ के वश नहीं है, उसमें संघर्ष के एक एक शब्दों को लिखने की जो तड़प है उसी के वश कवि कविता लिखता है क्योंकि उसी के शब्दों में –

---

[51] विजय राय (2011), 'सम्पादकीय से', *लमही,* वर्ष 31 : अंक 31 (जन-मार्च) : 09.

[52] *भगवत रावत : प्रतिनिधि कविताएँ* (2014) अरविन्द त्रिपाठी (सम्पा), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली : 77.

" इसलिए नहीं कि लिखकर अमर होना है

इसलिए कि मर-मर कर लिखना है।"[53]

यहाँ कवि उतनी ही बार उन लोगों के लिए मरता है। आम आदमी के संघर्ष की लड़ाई ही उसकी अपनी लड़ाई है। ऐसे समय में एक कवि का यही दायित्व होना चाहिए कि वह कल्पनाओं के संसार से हटकर अपने समय की हकीकत को स्वर दे, संघर्ष की लौ को अपने शब्दों द्वारा जीवित रखे। इसी तरह बहुत से कवियों, साहित्यकारों ने अपने समय के सच को अपनी कविताओं में उजागर किया है। भगवत रावत की 'यह महज कोरा कागज नहीं' शीर्षक कविता पढ़ते हुए रघुवीर सहाय की प्रसिद्ध कविता 'रामदास' बरबस ही याद आ जाती है। एक ऐसे भयानक समय का सच जिसमें आम आदमी की ज़िन्दगी का कोई मूल्य ही नहीं है। जहाँ आदमी को भरी चौड़ी सड़क पर हजारों आँखों के सामने घोषित रूप में मार दिया जाता है। जहाँ आदमी की ज़िन्दगी भीड़ में गुम हो जाती है। यहाँ याद आती है सफ़दर हाश्मी के साथ घटी वह घटना जिसे बीच सड़क पर जुलूस में मार दिया जाता है। नेल्सन मंडेला की वह जेल यात्रा जो रंग भेद के नाम पर किसी भी समाज के लिए काले धब्बे की तरह है।

"जब अपने काले रंग के लिए आदमी

सारी उम्र जेल में बिताता हो

जब अपने समय के भयानक सच को

नाटक में दिखाता आदमी

बीच सड़क पर मार दिया जाता हो।"[54]

---

[53] *भगवत रावत : प्रतिनिधि कविताएँ* (2014) अरविन्द त्रिपाठी (सम्पा), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली : 78.

आम आदमी के संघर्ष से डरे हुए लोग हर क्षण खून में रंगने को तैयार रहते हैं। ठीक ऐसे समय और संघर्ष को भगवत रावत ने अपनी कविता में उतारा है। इनकी कविता 'सुनो अशोक' भी हमारा ध्यान इसी ओर आकर्षित करती है।'रामदास' कविता में हत्यारा तो अपना काम करके चला जाता है, आखिर वह पेशे से हत्यारा ही है किन्तु उस भीड़ का क्या जो अपने सामने मरते हुए आदमी की जान बचाने में जरा भी सक्षम नहीं है ? क्या उसकी हत्या में उसका भी उतना ही दोष नहीं है जितना हत्या करने वाले का ? वास्तव में उन लोगों का भी उतना ही दोष है जो उसे बचा नहीं पाए। यही बात इस कविता में अशोक को संबोधित करते हुए कवि भगवत रावत भी कहते हैं कि उसे (सम्राट अशोक) अब किसी तरह का शोक करने की जरुरत नहीं है। कलिंग के नरसंहार में केवल तुम्हारा अकेले का दोष नहीं है, तुम्हारे साथ वे लोग भी उतने ही दोषी हैं जिन्होंने इस युद्ध को रोकने में तटस्थता अपनाई। अर्थात आज केवल हत्या करने वाला दोषी नहीं बल्कि वह भी उतना ही इस हत्या में भागीदार है जो उसे मरने से बचा नहीं पाया और खुद बचा रह गया –

" सुनो अशोक !
अब मारने वाला नहीं रहा हत्यारा
हत्यारा वह जो बचा नहीं पाया
बचा नहीं पाया और बचा रह गया।"[55]

आज साधारण लोगों के लिए कोई मुक्तिदाता बनकर नहीं आता। इस युग में अब कोई अवतार लेकर नहीं उतरता। मनुष्यता को बचाने का कोई जोखिम नहीं लेना चाहता।

---

[54] *भगवत रावत : प्रतिनिधि कविताएँ* (2014) अरविन्द त्रिपाठी (सम्पा), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली : 78.
[55] *भगवत रावत : प्रतिनिधि कविताएँ* (2014) अरविन्द त्रिपाठी (सम्पा), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली : 99.

धीरे-धीरे हम सब अपराधियों की जमात में शामिल हो रहे हैं। कवि पूछना चाहता है कि अब आखिर ऐसे समय में कोई क्यों नहीं आता हमारा मुक्तिदाता बनकर जिनके नाम से अपराधी, अत्याचारी घबराते थे, क्यों नहीं आते वे लोग अब कोई दया और करुणा के फ़रिश्ते बनकर –

"कहाँ चले गये वे सारे के सारे जो
गरीबों, भिखारियों और सताए हुए लोगों के सपनो में
मुक्तिदाता की तरह आते थे...
अत्याचारी जिनके नाम से थर्राते थे
और उनमें से कुछ तो करुणा और दया के
फ़रिश्ते कहे जाते थे।"[56]

भगवत रावत के लिए दमन और शोषण के चक्र में पिसती आम जनता का हित ही सर्वोपरी रहा है। इसके लिए वो किसी भी प्रकार के समझोते करने और तोड़ने के लिए सदैव तैयार रहे हैं। भगवत रावत ने मार्क्सवादी विचारधारा को इसीलिए अपनाया था क्योंकि इसी में उन्हें सर्वाधिक आम जनता की भलाई के रास्तें नजर आते थे। सर्वहारा वर्ग के हितों को लेकर जिस तरह से इस विचारधारा ने अपने कदम आगे बढ़ाये थे उसी के साथ कवि ने भी अपने कदम से कदम मिलाए। किन्तु जब कभी इन्होने आम आदमी के संघर्ष की लड़ाई को पिछड़ते देखा तभी उन्होंने इसका पुरजोर विरोध किया। भगवत रावत के लिए विचारधारा के मैला होने पर उसे निरंतर निखारते रहने की मांग इसलिए ही दिखाई पड़ती है। जब कभी इन्होने आम आदमी की लड़ाई में मार्क्सवादी विचारधारा का क्षरण महसूस किया, उसे तुरंत

[56] भगवत रावत, *ऐसी कैसी नींद*, (2004), वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली : 36.

कड़े शब्दों में फटकार लगाई । अर्थात आम आदमी के हित में कभी कोई वैचारिक समझोता इन्होने नहीं किया। 'हे कामरेड' शीर्षक कविता में इनके आम आदमी के पक्ष में और मैली हो चुकी विचारधारा के विपक्ष में खड़े होने की साफ झलक मिलती है । आम आदमी से दूर होती विचारधारा को इन्होने कड़ी फटकार लगाई है, व्यंग किया है –

"छोड़ दिया आपने भी मेंहनत मजदूरी करती
खटती-मरती जनता का साथ
आखिर कर ही लिए आपने भी
सत्ता की दलाली में काले अपने हाथ...
लगता है क्रांति का आपका सपना पूरा हो चुका है।"[57]

भगवत रावत के काव्य में आम आदमी गाँव और नगर के बीच दोहरा जीवन जीता हुआ भी दिखाई पड़ता है। इसके बीच के कारण चाहे जो भी रहे हो लेकिन एक बात तय है कि कवि इस दोहरी स्थिति से उत्पन्न द्वंद्व को पचा नहीं पाया है। इसलिए अक्सर उसके मन में पीड़ा का भाव भी उत्पन्न होता रहा है। इस पीड़ा का भोगी कवि का स्वयं का जीवन भी रहा है। गाँव और महानगर के द्वंद्व को झेलते हुए इन्होने आम आदमी की इन स्थितियों को अपनी कविताओं में हर जगह व्यक्त किया है । दिल्ली के बारे में लिखी इनकी प्रसिद्ध कविता 'कहते हैं कि दिल्ली की है कुछ आबो हवा ओर' में इन परिस्थितियों को भली भांति पहचाना जा सकता है । एक तरफ कवि का अपना परिवेश है जहाँ इन्होने आम आदमी की ज़िन्दगी के विभिन्न पहलुओं को देखा परखा और जिया वहीं दूसरी ओर महानगरीय जीवन की चकाचौन्द रोशनी का भी अनुभव है जिसने धीरे-धीरे इनके इसी

[57] *भगवत रावत : प्रतिनिधि कविताएँ* (2014) अरविन्द त्रिपाठी (सम्पा), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली : 136.

परिवेश को ढकना शुरू कर दिया इसलिए ऐसी स्थिति में कवि का चिंतित होना स्वाभाविक है। इसी से उसके जीवन में दोनों परिवेशों को लेकर द्वंद्व की स्थिति पैदा होती रही है –

" पर दिल्ली में रहते हुए / आप भोपाल के नहीं हो सकते
भोपाल का होने के लिए / भोपाल का होना जरुरी है
यह बात अलग है कि अब भोपाल को
भोपाल में खोजना / कठिन होता जा रहा है।"[58]

आम आदमी के इस दोहरे जीवन के द्वंद्व में भूमंडलीकरण और बाजारवाद ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। एक तरफ जहाँ वह अपने पुराने मूल्य, परम्पराओं को बचाने में जुटा है तो दूसरी तरफ बाजारवाद को रोकने में भी विफल हुआ है। जहाँ उसे अपने कुछ निशान बचे होने पर थोड़ा संतोष मिलता है तो दूसरी ओर अंधाधुंध बढ़ते बाजारवाद पर क्षोभ भी होता है –

"भोपाल के नामों निशानों को बाकायदा
मिटाया जा रहा है एक एक करके
भोपाल को धकेला जा रहा है / भोपाल से बाहर
अपने पूरे हो हल्ले के साथ
घुसी आ रही है दिल्ली भोपाल में।"[59]

इस प्रकार आम आदमी के विविध रंगी जीवन से ही भगवत रावत की सामाजिक चेतना का विकास हुआ है।

---

[58] *भगवत रावत : प्रतिनिधि कविताएँ* (2014) अरविन्द त्रिपाठी (सम्पा), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली : 146.
[59] *भगवत रावत : प्रतिनिधि कविताएँ* (2014) अरविन्द त्रिपाठी (सम्पा), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली : 147.

2. स्त्री, बच्चों एवं दलितों के प्रति चेतना

भगवत रावत के यहाँ एक ओर जहाँ अति साधारण लोगों में दूसरों के घरों में काम करने वाली, मैला-कुचैला ढोने वाली, दीन-हीन कचरा बीनने वाली स्त्रियाँ हैं तो वहीं मेंहनत मजदूरी करके अपना व अपने परिवार का भरण-पोषण करने वाली, घर-संसार के नित् कामों में उलझी पारिवारिक और घरेलू तथा संघर्ष की लड़ाई लड़ती स्त्रियाँ भी हैं। भगवत रावत की कविताओं में अधिकतर स्वाभिमानी, मेंहनती और अपने छोटे-बड़े कर्तव्यों को पूरी ईमानदारी से निभाती स्त्रियों का भी चित्रण मिलता है। इनके यहाँ स्त्रियाँ पुरुष से हीन नजर नहीं आती। वह हर क्षण उससे होड़ करती सी कंधे से कन्धा मिलाकर चलती हुई भी दिखाई पड़ती है। कहीं कहीं कवि ने करुणा से द्रव्यीभूत होकर इनकी दशा को चित्रित जरुर किया है लेकिन ऐसा होते हुए भी वे अपने लिए किसी करुणा अथवा दया की मांग करती हुई दिखाई नहीं देती हैं। वे किसी बंधे सांचे में नहीं बल्कि स्वतंत्र रूप से अपने कर्तव्य पथ पर आगे बढती रहती हैं। वे दुनिया की भागदौड़ से बेखबर जरुर हैं किन्तु अपनी दुनिया में सचेत रूप से आगे बढ़ रही हैं। उनकी यह दुनिया काल्पनिक न होकर वास्तविक संसार की दुनिया है। इस दुनिया का आकार भले उनके लिए बड़ा नहीं किन्तु छोटे रूप में भी वें संतुष्ट दिखाई पड़ती हैं। नित्य कर्मों को करते उनकी बिवाई जरुर फट गयी है, उनकी आँखे भले सूज गयी हैं लेकिन किसी प्रकार की शिकायत उनके मन में नहीं है। स्त्री के मन की गहरी पड़ताल करती हुई इनकी कविताएँ मुखर रूप से इनकी स्थिति को अभिव्यक्ति प्रदान करती हैं। समाज और परिवार के दायित्वों को निभाती स्त्री की स्थिति, सहज और सपाट बयानी में बयां होती है।

भगवत रावत के सामाजिक परिवेश में जिन साधारण स्त्रियों की बात आती है उनमें रोजमर्रा के घरेलू कामों को अंजाम देती महिलाएं हैं । इनके प्रति कवि के मन में अपार करुणा दिखाई देती है । यह वही स्त्री है जो सामाजिक एवं पारिवारिक दायित्वों को बिना थके अंजाम देती रहती है । घर भर के छोटे छोटे कामों को बड़ी ही कुशलता और चपलता से करती रहती है । एक वक्त में कई कामों में उलझी इस स्त्री के प्रति कवि के मन में स्नेह है जिसे उन्होंने अपने सामाजिक चिंतन में प्रमुख जगह दी है । इस संबंध में राजेंद्र राजन लिखते हैं "भगवत रावत की कविता में घर और स्त्री की सघन उपस्थिति है । यहाँ स्त्री न तो कल्पना के कानन की रानी है और न ही नारीवाद का एक परचम भर । यहाँ स्त्री हाड़-मांस की साधारण स्त्री है, घर-गृहस्थी के रोजमर्रा के दुःख तकलीफ़ झेलती और कठोर श्रम करती हुई ।"[60]

"रोटी बेलते वक्त अक्सर वह / बटन टांक रही होती है
और कपड़े फिंचते वक्त
सुखा रही होती है धूप में
अधपके बाल ।"[61]

'उसकी थकान' शीर्षक कविता में कवि को स्त्री-मन की जिस गहराई का अहसास होता है वह केवल कुछ शब्दों अथवा पंक्तियों में व्यक्त नहीं हो सकती बल्कि उसके लिए किसी लम्बी कहानी का ही सहारा उपयुक्त दिखाई पड़ता है –

[60] राजेंद्र राजन (2011), 'सहन करती स्त्री के ढेरों अनुभव और बिम्ब', *लमही,* वर्ष 31 : अंक 31 (जन-मार्च) : 102.

[61] *भगवत रावत : प्रतिनिधि कविताएँ* (2014) अरविन्द त्रिपाठी (सम्पा), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली : 28.

"कोई लम्बी कहानी ही / बयान कर सके शायद

उसकी थकान / जो मुझसे

दो बच्चों की दूरी पर / न जाने कब से

क्या क्या सिलते-सिलते / हाथों में

सुई धागा लिए हुए ही / सो गयी है।"[62]

भगवत रावत के यहाँ एक और जहाँ घर का काम-काज करती घरेलू स्त्री का वर्णन है तो दूसरी ओर पुरुष के साथ कंधे से कन्धा मिलाकर चलने और काम करने वाली स्त्री भी है। मंहगाई के इस दौर में आर्थिक स्तर पर स्त्री भी उतनी ही भागीदारी निभाती है जितनी पुरुष। वह भी पुरुष के साथ उसी परिश्रम से जुटी रहती है।'अतिथि कथा' शीर्षक कविता में एक तरफ जहाँ कल्लू घर की आर्थिक जिम्मेदारी संभालता है तो उसकी पत्नी रामा भी नित्य उसके साथ मेंहनत मजदूरी करती हुई उसका साथ नहीं छोड़ती। दोनों ही समान रूप से नित्य अपने काम को अंजाम देते रहते हैं। यहाँ स्त्री भी पुरुष के साथ कंधे से कन्धा मिलाकर चलती हुई दिखाई देती है। वह कहीं भी उससे पीछे नहीं रहती। यहाँ तक कि जजमान के उनके कार्य-स्थल पर पहुँचने के बाद जिस भागीदारी से तीनों 'गुलाब की अध्ही' को खाली करते हैं उसमें भी अपनी उपस्थिति दर्ज कराती है। कहने का अर्थ यही है कि कवि ने स्त्री के जिस सामाजिक रूप को जैसा देखा है वैसा ही बयाँ भी किया है। इनके यहाँ स्त्री के लिए कोई नए सौंदर्य के मानक नहीं गढ़े गये हैं वह समान रूप से पुरुष के हर गम और ख़ुशी में साथ रही है –

"तीनों ने शिकवों शिकायतों

[62] *भगवत रावत : प्रतिनिधि कविताएँ* (2014) अरविन्द त्रिपाठी (सम्पा), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली : 34.

रिश्तों-नातों के जन्म-जन्मांतरों की

मर्म भरी कथाओं के साथ

खाली की अद्धी गुलाब की

खूब खूब हिले जुले तीनों जनें।"[63]

भगवत रावत की कविताओं में जिन स्त्रियों का वर्णन आया है वे जीवन में अनवरत संघर्षशील रहने वाली स्त्रियाँ भी हैं। वह चाहे 'अमरीका' नाम से बुलाई जाने वाली आदिवासी स्त्री हो, बर्तन मांजने वाली 'गंगाबाई' हो अथवा 'मेधा पाटकर' जैसी जुझारू सामाजिक कार्यकर्ता, सभी अपने संघर्ष के बल पर समाज से अपनी लड़ाई जारी रखती हैं। इनकी पीठ संघर्ष के बोझ से झुकी नहीं है बल्कि अब भी उतनी ही चौकस है। अपने संघर्ष के आगे वें सौंदर्य शास्त्र की हर परिभाषा भूल चुकी हैं। केवल संघर्ष की परिभाषा के आगे उन्हें कुछ भी याद नहीं है। इन्हें अपने संघर्ष पर भरोसा है।'भरोसा' शीर्षक कविता में बर्तन वाली बाई को अपनी बेटी के लिए जारी संघर्ष में जो भरोसा है वह उसकी संघर्षशील जिजीविषा को बयाँ करती है। न्याय की लड़ाई में वह हर तबके से भिड़ जाने के लिए तैयार है। उसने अपने भरोसे को अंत तक नहीं टूटने दिया है –

"उसे भरोसा है कि एक दिन / अपराधी पकड़े जाएँगे

उसे भरोसा है कि एक दिन

उसकी लड़की मिल जाएगी

उसे भरोसा है।"[64]

---

[63] *भगवत रावत : प्रतिनिधि कविताएँ* (2014) अरविन्द त्रिपाठी (सम्पा), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली : 86.

[64] *भगवत रावत : प्रतिनिधि कविताएँ* (2014) अरविन्द त्रिपाठी (सम्पा), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली : 45.

इसी तरह 'सोच रही है गंगाबाई' शीर्षक कविता में भी झाड़ू-पोंछा कर अपने बेटे को पढ़े लिखे सफल आदमियों की कतार में खड़ा करके गंगाबाई चर्चा का विषय बनी हुई है । इसके पीछे उसका संघर्ष ही है जिसने उसे आज सारे मोह्हले भर के लोगों में चर्चित बना दिया है । यह बात अलग है कि समाज के संभ्रांत वर्ग में आज भी गंगाबाई की श्रेणी की औरतों को वह दर्जा नहीं मिलता जो उन्हें उनके संघर्ष के बल पर मिलना चाहिए किन्तु इससे इनके जज्बे में कोई कमी नहीं आई है । वह आज भी निरंतर हर तरह के संघर्ष के लिए तैयार दिखाई देती है । यह संघर्ष उसके परिश्रम से उपजा संघर्ष है । यहाँ वह किसी की दया का पात्र बनकर नहीं आती । वह निरंतर अपना काम करती हुई आगे बढ़ रही है । अपने काम को लेकर उसके मन में कोई हीन भावना अथवा अवसाद की स्थिति नहीं है ।

स्त्री ने पुरुष के जीवन में हर मोड़ पर साथ दिया है । पुरुष को जीवन में जिस तृप्ति का अनुभव होता है उसमें स्त्री की महत्वपूर्ण भूमिका रही है । वह उसके जीवन में उम्मीद बन हमेंशा उसे नई दिशा देने का काम करती है । भगवत रावत ने अनेक कविताओं में स्त्री के इसी रूप को स्वर दिया है । स्त्री एवं पुरुष के आत्मिक संबंधो पर जिसमें वह पुरुष के जीवन का अनुराग और उम्मीद बनकर आती है ।'तुम हो तो' शीर्षक कविता में कवि स्त्री को जीवन के आधार रूप में स्वीकार करते हुए एक नई सुबह की उम्मीद जब करता है तब वह उसे एक नई परिभाषा में मानो ढाल रहा होता है –

"लिखी जा नहीं सकेगी कभी तुम्हारे बिना
तृप्ति के बाद की शान्ति...
निष्कंप लौ की तरह जागते मद्धिम प्रकाश में

इन्द्रियों का खो सा जाना / तुम हो तो है इस तरह

एक और सुबह पाने की उम्मीद की नींद।[65]

भगवत रावत के यहाँ करुणा का भाव भी मिलता है। इस सम्बन्ध में उन्हें 'करुणा का कवि' कहा जाये तो अतिश्योक्ति न होगी। समाज में निम्न तबके के आम आदमियों, स्त्रियों, बच्चों के लिए उनके मन में विशेष करुणा का भाव रहा है। इनकी 'कचरा बीनने वाली' शीर्षक प्रसिद्ध कविता में उन किशोरियों के प्रति इनके मन में जो भाव उपजा है वह अन्यतर दुर्लभ है। यह दया अथवा करुणा सतह से उपजी करुणा नहीं है बल्कि कवि के हृदय से निकला उद्गार है। समाज के जिस वीभत्स सच को लेकर कवि ने अपनी करुणा बिखेरी है वह किसी भी समाजशास्त्र अथवा सौंदर्यशास्त्र में नहीं समा सकती। निराला की सुप्रसिद्ध कविता 'तोड़ती पत्थर' का एक नया रूप इस कविता में देखा जा सकता है। निराला ने इस कविता में सौंदर्य के जिन मानकों को गढ़ा था, उसका अगला चरण हम भगवत रावत की इस कविता में देख सकते हैं। दोनों ही कविताओं में अपनी-अपनी कर्म स्थली है। एक के लिए जहाँ चिलचिलाती धूप की मार तो दूसरी में कूड़े के ढेर की गंदगी, दोनों ही स्थितियों में दया और करुणा का उपजना लाजिमी है। समाज के एक मर्म-स्पर्शी और भयानक सच से रूबरू करवाती दोनों कविताओं में इन कवियों का अंतर्मन छलक पड़ा है। भगवत रावत की इस कविता में भी जिस सहज स्थिति में स्त्री का कारुणिक पक्ष उभरा है वह किसी भी कठोर हृदय में करुणा का उदय करने में सक्षम है। यहाँ कवि एक अलग ही समाजशास्त्र और सौंदर्यशास्त्र की मांग करता दिखाई पड़ता है –

---

[65] *भगवत रावत : प्रतिनिधि कविताएँ* (2014) अरविन्द त्रिपाठी (सम्पा), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली : 128-129.

"आपने अपने शहर में भी / जरुर देखी होंगी

कचरा बीनने वाली लड़कियां

अपने आस-पास / घूमते सुअरों के बीच कैसी लगती हैं

ये कचरा बीनने वाली लड़कियां ?

यह सवाल / समाजशास्त्र के कोर्स के बाहर का है

और सौंदर्यशास्त्र उनके लिए / अभी बना नहीं।"[66]

संवेदनशीलता किसी भी कवि की मूल प्रवृति होती है। इसी के बल पर वह अपनी कविता में सौंदर्य शास्त्र के नए मानक गढ़ता है। बहुत से कवि सौंदर्य के केवल भव्य रूप को ही उजागर करते हैं लेकिन कुछ ही ऐसे होते हैं जो कुरूप और वीभत्स में भी उसी भव्यता को देख लेते हैं। यहाँ भगवत रावत ने इसी का उदाहरण दिया है। उनकी संवेदनशीलता भव्य और कुरूप दोनों के लिए एक जैसी है। घरेलू कामों में खटती, संघर्ष में जूझती, हक़ के लिए लड़ती, मजदूरी करती, बर्तन मांजती, झाड़ू-पोंछा करती अथवा कूड़े के ढेर पर मंडराती हर तरह की स्त्री के लिए ये समान रूप से संवेदनशील रहे हैं। इनके लिए काव्य रचना केवल आनंद का विषय अथवा अपने को प्रगतिवादी कहलाने के लिए नहीं है। किसी खेमें में खड़े होने अथवा पुरस्कार पाने हेतु इन्होने अपने काव्य का सृजन नहीं किया है बल्कि इन्हीं के शब्दों में –

"इसलिए की लिखना जरुरी है

इसलिए की रास्ता और कोई नहीं लिखने के सिवाय।"[67]

---

[66] *भगवत रावत : प्रतिनिधि कविताएँ* (2014) अरविन्द त्रिपाठी (सम्पा), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली : 82-83.

वास्तव में अपने समय की अनुभूति को व्यक्त करना ही इनका सच्चा कर्म है। काव्य सृजन इनके लिए केवल आनंद प्राप्ति नहीं बल्कि कर्म है। इसी कर्म को करते हुए इन्होने समाज के हर रूप को व्यक्त किया है। जिस तरह व्यक्ति नित्य के कर्म अपने जीवन में करता रहता है उसी तरह भगवत रावत ने भी कविता कर्म को निभाया है।

भगवत रावत के यहाँ ऐसी स्त्री के भी दर्शन होते हैं जो पुरुष के साथ-साथ समाज के लिए भी प्रेरणा बनकर उभरी है। व्यक्ति जब समाज में रहकर भी अकेला हो जाता है, जब अनचाहे दुःख उसे घेर लेते हैं तब वही उसका संबल बनकर उसकी प्रेरणा साबित होती है। वह स्वयं थकी होकर भी उसे आगे बढ़ने का हौंसला देती है। माँ एवं पत्नी के रूप में जिस स्त्री का चित्रण भगवत रावत ने अपनी कविताओं में किया है वह इसी रूप में हमारे सामने आता है। दुःख और अंधकार की स्थिति में व्यक्ति का माँ और पत्नी से घनिष्ठ लगाव रहता है। कवि जब भी समाज के दुखों और पीड़ाओं से दुखी होता है, अक्सर माँ और पत्नी से साँझा करता है। हमेंशा दुःख की स्थिति में इन्होने उसे संभाला है और कवि ने भी इनके दुखों को अपनी कविताओं में व्यक्त किया है –

"घिरा हुआ दुखों से / जब जब सोचता हूँ ...
और लिखते हुए
जब लिखता हूँ एक शब्द / तुम
तो तुम ही तो होती हो
घर के हर कोने से बोलती हुई / परेशान।"[68]

---

[67] *भगवत रावत : प्रतिनिधि कविताएँ* (2014) अरविन्द त्रिपाठी (सम्पा), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली : 77.
[68] *भगवत रावत : प्रतिनिधि कविताएँ* (2014) अरविन्द त्रिपाठी (सम्पा), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली : 33.

भगवत रावत की सामाजिक चेतना के परिवेश में बच्चे और दलित भी उसी रूप में आते हैं जिस रूप में स्त्री और आम आदमी। कवि की चेतना किसी एक वर्ग तक सीमित नहीं रही है। भगवत रावत कुछ उन विरले कवियों में शामिल किये जा सकते हैं जिन्होंने बच्चों के प्रति विशेष करुणा से दृष्टि डाली। बहुत से महत्वपूर्ण कवियों की दृष्टि इस ओर नहीं जा पाई है और जिन अन्य कवियों ने इस ओर अपनी दृष्टि फेरी है वह इस क्षेत्र में इतनी करुणा और संवेदनशीलता से शायद नहीं लिख पाए। भगवत रावत के बारे में इस ओर से कहा जा सकता है कि बहुत अधिक न सही किन्तु जितनी भी निगाह उनकी इस ओर गयी उसमें ठोस रूप से इनके प्रति गहन अनुभूति दिखाई देती है। भगवत रावत साधारण से दृश्य में भी इनकी उस वास्तविक दशा को देख लेते हैं जिन्हें हमारी आँखे नित्य प्रति देखती हुई भी नहीं देख पातीं। यह कवि की पैनी निगाह और गहन चेतना ही है जो उन्हें इस अनुभूति से इंगित करा देती है। और इसके लिए कवि के पास वो भाषा भी है जो सीधे शब्दों में उस साधारण स्थिति को असाधारण रूप में व्यक्त भी कर देती है।

भगवत रावत ने बच्चों पर जो कविताएँ लिखीं उनमें संभ्रांत वर्ग के बच्चों की खिलखिलाती हंसी नहीं है, उनके रूप का सौंदर्य नहीं है बल्कि ये वो बच्चे हैं जो अति साधारण हैं। जिनमें बचपन की हंसती-मुस्कराती किलकारियां, शरारतें, उमंगे और उल्लास से भरा जीवन नहीं है। दुनिया जहान की चिंता से मुक्त उन्मुक्त गगन में उड़ते, समाज के कथित सभ्य स्कूलों में शिक्षा ग्रहण करते बच्चे यहाँ एकदम नदारद हैं। यहाँ वो साधारण और गरीब बच्चे हैं जिन्होंने बचपन में ही जिम्मेदारियों के अहसास को अपने कन्धों पर ओढ़ लिया है। जिन्हें दो वक्त की रोटी के लिए सुबह से ही काम पर निकल जाना पड़ता है, जिनके लिए शिक्षा कोसों दूर है –

"अलखसुबह

काम पर जाता हुआ बच्चा

कोहरे में डूबी हुई सड़क

पार कर रहा है।"[69]

जिस कोहरे में घर के भीतर रजाई से हाथ निकलना मुशिकल हो ऐसे में एक स्वस्थ जवान आदमी की जगह जब बच्चों को बाहर निकलने की हिम्मत करनी पड़े तो समझ लेना चाहिए कि समाज जिस धरातल पर खड़ा है उसकी नींव बहुत कमजोर हो चुकी है। जिस तरह सड़क और बच्चे को नहीं पता कि वह सड़क पार कर रहा है उसी प्रकार हमारे समाज को भी नहीं पता है। ऐसे समय में केवल कवि की आँखे ही ऐसे घने कोहरे में भी उसे देख लेती हैं और सबके सामने यह प्रश्न रख देती हैं कि आखिर ऐसा क्यों हो रहा है ?1980 के दशक के बाद स्त्रियों और बच्चों को लेकर हिंदी में बहुत सी कविताएँ लिखी गईं। बालश्रम, शोषण को लेकर समकालीन कवि राजेश जोशी की प्रसिद्ध कविता 'बच्चे काम पर जा रहे हैं' को कौन भूल सकता है जिसे काफी चर्चा मिली, किन्तु उससे एक दशक पहले भगवत रावत द्वारा लिखी गयी 'बच्चा' शीर्षक कविता में भी उसी स्थिति का चित्रण है फर्क सिर्फ इतना है कि राजेश जोशी ने इसके पीछे जिन संभावनाओं को व्यंग के रूप में रखा है भगवत रावत ने उन्हें पाठक और श्रोता की स्वयं की चेतना के लिए छोड़ दिया है। यहाँ भगवत रावत उस व्यवस्था पर भी व्यंग करते हैं जिसने इनके बचपन को बालश्रम के लिए मजबूर किया है। इस संबंध में अरविन्द त्रिपाठी लिखते हैं –" दरअसल यह श्रम जीवन में श्रम शोषण के साथ बचपन विहीन बच्चों की भी कविता है। आज़ादी के बाद

[69] *भगवत रावत : प्रतिनिधि कविताएँ* (2014) अरविन्द त्रिपाठी (सम्पा), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली : 22.

श्रम संस्कृति से उपजे बच्चों की तादाद जिस कदर बढ़ी है उसे कवि ने बहुत पहले ही भांप लिया था। भगवत की एकवचन में लिखी गयी इस कविता में सड़क वह प्रतीक है- व्यस्था की, जिस पर चलते हुए देश के नौनिहाल पढने के बजाय सुबह सुबह काम पर जा रहे हैं।"[70]कहना न होगा की कवि ने जिस गहरी अनुभूति के साथ इस स्थिति को पंक्तियों में उजागर किया है वह वास्तव में हमारे समाज की बहुत बड़ी विडंबना ही है। केवल इतना ही नहीं भगवत रावत बार-बार इन स्थितियों को देखते हैं और उसी रूप में व्यक्त कर देते हैं। इनकी 'कटोरदान' शीर्षक कविता में भी यही बचपन की बिखरती दारुण स्थिति है –

"अलमुनियम का वह दो डिब्बों वाला / कटोरदान
बच्चे के हाथ से छूटकर / नहीं गिरता होता सड़क पर
तो यह कैसे पता चलता / कि उसमें
चार रुखी रोटियों के साथ साथ
प्याज की एक गांठ / और दो हरी मिर्चें भी थीं।"[71]

ऐसे क्षण में सचमुच किसी भाषा की जरुरत ही नहीं हैं इस स्थति के पीछे की हकीकत को बयां करने के लिए। बच्चे के हाथ से छूटकर यह केवल चार रुखी रोटियों का ही बिखरना नहीं है; हमारे समाज की नींव का भरभराकर ढह जाना है। भीतर से खोखली हो चुकी हमारे समाज की व्यवस्थाओं का चरमरा कर बिखर जाना ही है। जिस समाज का बचपन ठोंकरे खाने के लिए मजबूर है उस समाज का पतन भीतर से निश्चित रूप से हो चुका है।

---

[70] *भगवत रावत : प्रतिनिधि कविताएँ*, (2014) अरविन्द त्रिपाठी (सम्पा), भूमिका से, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली : 15.

[71] *भगवत रावत : प्रतिनिधि कविताएँ* (2014) अरविन्द त्रिपाठी (सम्पा), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली : 23-24.

अपने कन्धों पर अपने बचपन को ढोते बच्चे किसी भी समाज के लिए बहुत बड़ा कलंक है । और भारतीय समाज की विडंबना यही है कि वह आज भी इस कलंक को ढोए जा रहा है । बड़े-बड़े एन.जी.ओ. और सरकार की कल्याणकारी योजनायें केवल दिखावा भर बनी हुई हैं । बच्चो, स्त्रियों एवं दलितों के कल्याण के नाम पर बड़े-बड़े पुरस्कार तो घोषित किये जा रहे हैं किन्तु वास्तविक स्थिति में बदलाव जस का तस बना हुआ है । समाज की इस भयानक सच्चाई को जानते हुए भी हमारी व्यवस्थाएं केवल मूक दर्शक बन कर रह गईं हैं। इनके प्रति अपने दायित्वों से भागता हमारा समाज असहाय नजर आता है । ऐसी स्थिति में जब कोई कवि इस सच्चाई से हमारा परिचय करवाता है तब रोम रोम पीड़ा से भर उठता है । भगवत रावत ने जिस गहरी संवेदना से इस कविता में बच्चे की स्थिति को बयाँ किया है वही हमारे समाज की वास्तविक और कड़वी सच्चाई है । भगवत रावत इस रूप में दुःख और पीड़ा को हृदयंगम करने वाले कवि के रूप में हमारे सामने आते हैं।

वास्तव में दुःख और पीड़ा किसी एक ही समाज की सच्चाई नहीं है वह हर जगह अलग अलग रूपों में व्याप्त होती है । अंग्रेजी के कथाकार चार्ल्स डिकेंस ने भी अपने साहित्य में बच्चों के प्रति विशेष सहानुभूति व्यक्त की है । बच्चों के दुःख और पीड़ाओं को लेकर ही उन्होंने अपने साहित्य का ताना-बाना बुना था। कहा जाता है की जब उनकी मृत्यु हुई थी तो उनकी कब्र वंचितों, दलितों और बच्चों द्वारा लाये गए फूलों से ही पूरी तरह भर गयी थी। क्योंकि उन्होंने इन्हीं लोगों को अपने साहित्य में स्थान दिया था। भगवत रावत ने जिन वंचितों, स्त्रियों, दलितों एवं बच्चों को अपने काव्य का विषय बनाया वह इनके प्रति इनके मन में अपार स्नेह और अनुभूतिक पीड़ा ही रही है। कवि के मन में केवल दिखावे के लिए ही संवेदना नहीं है बल्कि वह इनके लिए बहुत कुछ करने को लालायित रहते हैं -

"जाना है एक बच्चे के पास

उसके कान में / उसकी उम्र का

एक गाना / गुनगुनाना है"[72]

कवि की संवेदना तमाम बेसहारा और दीन-हीनों के प्रति भी यहाँ दिखाई पड़ती है। कवि ने हमेंशा ही स्त्रियों, दलितों एवं बच्चों के अधिकारों की बात की है वह जानता है कि इनकी स्थिति यदि बेहतर होगी तभी हमारा समाज आगे बढ़ पायेगा। जिस समाज में इनकी चींखे सुनाई देती हों उस समाज को पतन की राह पर बढ़ने से कोई नहीं रोक सकता। इसलिए कवि बार-बार मांग करता है कि इन्हें इनका वास्तविक हक़ मिलना ही चाहिए। वह व्यवस्था से गुजारिश करता है कि इनकी ओर ध्यान दिया जाना अति आवश्यक है –

"वे जो बहुत सारे बच्चे / शोर कर रहे हैं

ध्यान से सुनो / कहीं वे पेड़ तो नहीं मांग रहे हैं

पहाड़ नदियाँ समुद्र तो नहीं मांग रहे हैं

हवा धूप चांदनी तो नहीं मांग रहे हैं

जमीन और आसमान तो नहीं मांग रहे हैं।"[73]

वास्तव में बच्चे मांग रहे हैं अपना बचपन, अपने लिए शिक्षा, अपने लिए हर वो सुविधाएँ जो उन्हें आगे चलकर समाज का एक सभ्य नागरिक बना सके और यह हमारे समाज और व्यवस्था का दायित्व है कि वह इन्हें भी विकास के समुचित अवसर उपलब्ध कराए। यहाँ कवि की संवेदना केवल अनुभव किये हुए सच को व्यक्त करने की ही नहीं बल्कि इनके

[72] *भगवत रावत : प्रतिनिधि कविताएँ* (2014) अरविन्द त्रिपाठी (सम्पा), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली : 29.

[73] *भगवत रावत : प्रतिनिधि कविताएँ* (2014) अरविन्द त्रिपाठी (सम्पा), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली : 55.

लिए अधिकारों की मांग भी करती है। उसके मन में इनके प्रति करुणा तो है ही साथ ही अधिकारों के लिए विशेष चिंता भी है।

भगवत रावत के काव्य में दलितों के प्रति भी विशेष करुणा का भाव परिलक्षित हुआ है। कवि ने अप्रत्यक्ष रूप से जिन पिछड़े और शोषितों की बात की है ये वही लोग हैं जो समाज के विभिन्न संभ्रांत वर्गों द्वारा दबाये गये हैं। यहाँ दलित का अर्थ किसी जाति विशेष से न जुड़कर उन सभी हाशिये के लोगों से जुड़ जाता है जो समाज के विकसित तबके द्वारा दबाये गये हैं और जो विकास की अंधी दौड़ में बहुत पीछे छूट गये हैं। ये लोग शोषण का इतना अधिक शिकार हुए हैं कि इनके भीतर किसी अनजाने डर ने जगह बना ली है। वो आगे तो बढ़ना चाहते हैं लेकिन उनमें इतनी हिम्मत नहीं कि वें किसी का विरोध कर सकें। भगवत रावत ने अपने काव्य में ऐसे लोगों की व्यथा को बार-बार उजागर किया है। हिंदी साहित्य में बींसवी सदी के आठवें दशक के बाद स्त्री एवं दलित साहित्य ने विशेष जोर पकड़ा है। अनेक स्त्री-पुरुष रचनाकारों के साथ दलित एवं गैर दलित रचनाकारों ने इस विमर्श को सृजनात्मकता के नए आयाम दिए हैं। बहुत से इन रचनाकारों ने अपने भोगे हुए यथार्थ को साहित्य की विभिन्न विधाओं में व्यक्त किया है। इसी सन्दर्भ में अक्सर एक सवाल उठाया जाता है कि क्या पुरुष एवं गैर दलित रचनाकार भी अपने साहित्य में इस यथार्थ को उतनी ही प्रमाणिकता के साथ व्यक्त कर सकता है ? इसमें सबके अपने अपने मत रहे हैं। इस सन्दर्भ में जब हम भगवत रावत के काव्य पर नजर डालते हैं तो पातें है कि पुरुष और गैर दलित होते हुए भी इन्होने जिन स्त्रियों एवं दलितों की बात की उसमें भोगे हुए यथार्थ की तरह ही गहन संवेदना है। इन्होने उन लोगों की स्थितियों को उठाया जिन्हें डरा धमकाकर दबाया गया है, जो सुविधाओं से वंचित हैं, जो आगे बढ़ने को लालायित हैं

किन्तु जिन्हें पीछे धकेल दिया जाता है। और जब किसी के खिलाफ वे आवाज उठाने की कोशिश करते हैं तो उनको इतना डरा दिया जाता है कि उनके पैर और जुबान लड़खड़ाने लगते हैं। सही बात को कहना जैसे किसी खतरे को न्योता देना है। हर तरफ भय का माहौल बना रहता है। 'डर' शीर्षक कविता में कवि ने इसी ओर इशारा किया है –

"इतने डरे हुए हैं वे लोग
की खतरे को खतरा कहते हुए
जुबान की तरह / खुद लड़खड़ाने लगते हैं"[74]

भगवत रावत केवल सुनी-सुनाई बातों पर विश्वास करके अपनी धारणा नहीं बनाते बल्कि उनके सामने जो प्रत्यक्ष रहा है अथवा जिस यथार्थ को उन्होंने स्वयं अनुभूत किया है उसी से उनकी चेतना का विकास हुआ है –

"हमने उनके घर देखे
घर के भीतर घर देखे
घर के भी तलघर देखे
हमने उनके / डर देखे।"[75]

भगवत रावत की दलितों एवं पिछड़ों के प्रति यह संवेदना किसी साहित्य को पढ़कर निर्मित नहीं हुई है, वे समाज में पनपे इनके प्रति शोषण को स्वयं अपनी आँखों से देख चुके हैं। इनके जीवन को बहुत करीब से देखा और महसूस किया है –" इतना जरुर कहना चाहता हूँ कि जिन लोगों के बीच मेरा बचपन बीता वे सारे लोग यानि पूरा मोह्हला, हमसे कहीं

[74] *भगवत रावत : प्रतिनिधि कविताएँ* (2014) अरविन्द त्रिपाठी (सम्पा), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली : 38.
[75] वही : 78.

ज्यादा गरीब था...इतनी अशिक्षा, इतनी दरिद्रता इतनी गंदगी और लगभग नारकीय जीवन मैंने भोपाल की दुनिया में भी नहीं देखा ।"[76] स्पष्ट है कि दलितों एवं गरीबों के प्रति इनकी संवेदना केवल दिखावे मात्र की ओढ़ी हुई संवेदना नहीं है बल्कि स्वयं की अनुभूति से उपजी संवेदना है । इन्होने अपने समाज के जिस कटु यथार्थ को जैसा जिया और देखा है वैसा ही अपनी कविताओं में व्यक्त भी किया है –

"हमने चलती चक्की देखी
हमने सबकुछ पिसते देखा
हमने चूल्हे बुझते देखे
हमने सबकुछ जलते देखा ।"[77]

इस प्रकार स्त्रियों, बच्चों एवं दलितों के प्रति भगवत रावत के मन में जिस सामाजिक चेतना ने स्वरुप ग्रहण किया है वह मुखर रूप से इनकी कविताओं की अभिव्यक्ति बनी है ।

[76] *भगवत रावत : प्रतिनिधि कविताएँ*, (2014) अरविन्द त्रिपाठी (सम्पा), भूमिका से, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली : 07.

[77] *भगवत रावत : प्रतिनिधि कविताएँ* (2014) अरविन्द त्रिपाठी (सम्पा), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली : 52.

3. पारंपरिक मूल्यों एवं मानवीय संबंधो के प्रति चेतना

"उड़ते चले गये पक्षियों के झुण्ड
खाली करते आकाश
खिंची रह गई बस
पंखों की रेखाएं !"[78]

बहुत ही कम शब्दों में लिखी गई भगवत रावत की यह प्रतीकात्मक कविता बहुत कुछ बयाँ कर जाती है। ये 'पंखों की रेखाएं' वास्तव में हमारे समाज से धीरे-धीरे गायब होते जा रहे पारंपरिक मूल्य एवं मानवीय संबंधों की ही हैं जिन्हें दुनिया की आपाधापी में मनुष्य पीछे छोड़ कर आगे बढ़ता जा रहा है।वह भौतिक सुख साधनों की तलाश में जिन रिश्तों को भूल गया है, अपने समाज और संस्कृति की जिस अस्मिता को भूल गया है उसी की रेखाएं कवि भगवत रावत की चेतना में यहाँ खिंचती चली गईं हैं। भगवत रावत की सामाजिक चेतना पारंपरिक मूल्यों और समाज के आपसी मानवीय रिश्तों से निर्मित होती है। कहा जाये तो इनके काव्य में आम आदमी के प्रति जो बेचैनी और अकुलाहट है,उसके पीछे इन्हीं पारंपरिक मूल्यों की खोज है। समाज की खोई हुई अश्मिता की तलाश इनके काव्य में मुखर होकर हमारे सामने आती है। इसके साथ ही कवि की चेतना आदर्श दिशाओं की ओर भी संकेत करती है। खुले बाजारीकरण के इस दौर में जहाँ हर वस्तु बिक रही है वहां मानवीय मूल्यों और रिश्तों की जो स्थिति है इसी ओर इनकी कविता बार-बार हमारा ध्यान आकर्षित करती है। हमारी सभ्यता और संस्कृति के प्रश्नों से टकराती

[78] *भगवत रावत : प्रतिनिधि कविताएँ* (2014) अरविन्द त्रिपाठी (सम्पा), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली : 93.

इनकी कविता किसी भीड़ में खो चुके हमारे पारंपरिक मूल्यों के लोक की खोज करती हैं। इस सन्दर्भ में कुमार अम्बुज लिखते है " भगवत रावत की कविताएँ कवि की अपनी जड़ों से पोषित हैं और वहीं से अपना व्यवहार तय करती हैं। लोक के प्रति उनकी आस्था व्यापक है ।"[79]वास्तव में देखा जाये तो इन्हीं मूल्यों एवं मानवीय रिश्तों से ही किसी वास्तविक आदर्श समाज की निर्मिति होती है। इनके बिना समाज केवल एक शारीरिक ढांचा भर दिखाई देता है जिसमें आत्मा का निवास नहीं होता इसलिए इनकी कविता उसी आत्मा की पुकार निरंतर करती दिखाई पड़ती है। इस पुकार में केवल भावुकता नहीं है बल्कि एक आह्वाहन है। बाज़ार ने इतना कुछ ढक लिया है चारों तरफ से कि अब कोई भी जगह खाली दिखाई नहीं देती। व्यक्ति की सब इच्छाएं उसकी अपनी न रहकर बाज़ार की हो गईं हैं।व्यक्ति न चाहते हुए भी बच नहीं पा रहा है।उसके सब मूल्य, रिश्ते-नाते प्रभावित हो रहे हैं।'जो भी खुली जगह देती है दिखाई' शीर्षक कविता में कवि की इसी अनुभूतिक पीड़ा का सच दिखाई पड़ता है –

"जो भी खुली जगह दिखाई देती है कहीं
कुछ दिनों बाद निकलों वहां से तो पता चलता है
उस जगह भी खुल गयी है कोई / दुकान
कैसा लगता है जब बहुत दिनों बाद मिलने की
गहरी इच्छा लिए आप किसी दोस्त के

[79] कुमार अम्बुज (2004), 'एक दूसरे के लिए जगह बनाती कविता', *समकालीन भारतीय साहित्य,* वर्ष 25 : अंक 116 (नवं.-दिस.) : 131.

घर जाएँ और घर की जगह पाएं / दुकान। "[80]

बाज़ार की भीड़ में आज व्यक्ति के पारंपरिक मूल्य और रिश्ते-नाते खोते जा रहे हैं। भौतिक वस्तुओं से लेकर आत्मीय संबंधों तक, सभी के स्वरुप को इसने बदल कर रख दिया है। जिस दोस्ती के रिश्ते को कवि खोजने निकला है वह बाज़ार की ओट में कहीं दब चुका है। अब उसके सामने जो नया रूप उभरा है वहां इन रिश्तों के लिए कोई जगह नहीं है। बाजारवाद की स्थिति को भगवत रावत की कविताओं के माध्यम से मूल्यांकित करते हुए वी.जी.गोपालकृष्णन लिखते हैं–"जब समाज बाज़ार केन्द्रित हो जाता है, तो मनुष्य सब कुछ को बाज़ार मूल्य के आधार पर देखने लगता है। तब मानव संबंधों की आत्मीयता भी नष्ट हो जाती है। संबंधों का आधार भी व्यक्तिगत लाभ के लिए नष्ट हो जाता है। यानि मानवीय मूल्य चरमराने लगते हैं।"[81]

भगवत रावत अपनी कविताओं में समाज की हर छोटी से छोटी चीज़ की पड़ताल करते हैं। उन्हें हर उस चीज़ की फ़िक्र है जिससे सामाजिक मानवीय मूल्यों का निर्माण हुआ है। इनकी यादों में गली के मोड़ पर खम्बे पर टिमटिमाने वाला बल्ब भी समाया है तो वह नीम का पेड़ भी जिसे इन्होने कभी सींचा था और वह कुआँ भी जिससे पानी खींचा था। इनका मन जब भी इनसे होकर गुजरता है एक अनचीन्ही तड़प से अकुला उठता है, इन्हें लगने लगता है न जाने सारी चीजें कहाँ चली गईं हैं। सामाजिक समस्याओं की जाँच पड़ताल और इन्हीं अस्मितओं की ख़ोज में इनकी चेतना विकसित हुई है। इस सन्दर्भ में वी.के.सुब्रमण्यम लिखते हैं "उन्होंने अपने समय की संकीर्ण सामाजिक समस्याओं को

[80] *भगवत रावत : प्रतिनिधि कविताएँ* (2014) अरविन्द त्रिपाठी (सम्पा), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली : 89.
[81] वी.जी.गोपालकृष्णन (2013), 'आर्थिक नृशंसता के दौर में कविता', *संवेद,* वर्ष 05 : अंक 07 (जुलाई) : 179.

करीब से देखा, परखा और उन्हें पंक्तिबद्ध किया है। इनमें प्रमुख हैं-अपने देश की जनता की खोई हुई अस्मिता की तलाश, दलित और स्त्री शोषण के विभिन्न पहलु,औद्योगिक-आधुनिक समाज के कारण संकट में पड़े पर्यावरण आदि।"[82] इसलिए इनका मन आह्वाहन कर उठता है कि कोई तो सुने, रोके इन चीजों का जाना, क्योंकि धीरे-धीरे इन सब का चला जाना अथवा किसी भीड़ या सूने में खो जाना ठीक नहीं है, जो अपने स्तर पर जैसा प्रयास कर सकता है वह करे। कवि के पास तो केवल कागज और कलम के सिवाय तीसरी चीज़ नहीं है और वह इन्हीं से सब कुछ को रोक लेना चाहता है।

समाज से रिसते चले गये इन पारंपरिक मूल्यों और मानवीय संबंधों की खोज में कवि का मन निरंतर लगा रहता है। 'न जाने कब से' शीर्षक कविता में इसी खोज में कवि लगा हुआ है। उसके मन में जाने कब से उस आदमी से मिलने की तमन्ना छटपटा रही है जिससे मिलते ही सचमुच के निस्वार्थ प्रेम-संबंधों की कोंपलें फूटने लगे। जिनके बीच किसी भी तरह की दूरी न हो, जहाँ आत्मीयता का सागर लहरा उठे और दुनिया जहान के झंझट पीछे छूट जाएँ, जहाँ उसका मन बनावटी सांचों से निकलकर मुक्त विचरण करे –

"न जाने कब से मिलना चाह रहा हूँ एक आदमी से
जिससे मिलते ही गले लगने पर
दोनों की कमीज की जेब में रखे चश्मों के फ्रेम
दबकर सचमुच टूट जाएँगे
बातें करते करते बीत जाएगी सारी रात

[82] वी.के.सुब्रमण्यम, 'अपने समय की पहचान', डॉ.पी.रवि (सम्पा), *कविता का वर्तमान,* वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली : 41.

और खाना रखा रखा ठंडा हो जाएगा।"[83]

'वह भी' शीर्षक कविता में भी कवि का मन ऐसे ही व्याकुल है। उसके मन में इन रिश्तों, मूल्यों के लिए अब भी इंतजार बाकी है। वह आज भी उसी निगाह से इनके फिर से लौट आने की बाट जोह रहा है लेकिन विडंबना यही है कि जिसे वह खोज रहा है वह सब वक्त से बहुत आगे निकल चुका है –

"न जाने कब से बैठा हूँ दरवाजा खोलकर
कमरे में अकेला / बार-बार देखता बाहर
कि वह न पहचान पाए / तो मैं ही पहचान लूँ उसे पहले
कहीं वह भी न निकल जाए / सड़क से गुजरते उसी तरह के
और लोगों की तरह।"[84]

और जब कभी उसे इनके आने की जरा सी भी झलक मिलती है तो कवि का मन जैसे उल्लास और ख़ुशी से भर उठता है। जरा सी आहट शरीर में नए प्राण फूंक देती है –

"इतने सर्द मौसम में
यह चमत्कार ही तो है कि किन्हीं दो आँखों की चमक
फूंक देती है ठिठुरती आत्मा में प्राण।"[85]

कवि का मन इन सबके वापस लौटने में चहक भी उठता है जब कभी उसे उम्मीद की कोई किरण नजर आती है ठीक उसी तरह जैसे –

---

[83] *भगवत रावत : प्रतिनिधि कविताएँ* (2014) अरविन्द त्रिपाठी (सम्पा), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली : 94.
[84] *भगवत रावत : प्रतिनिधि कविताएँ* (2014) अरविन्द त्रिपाठी (सम्पा), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली : 97.
[85] *भगवत रावत : प्रतिनिधि कविताएँ* (2014) अरविन्द त्रिपाठी (सम्पा), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली : 98.

"दिन भर की उड़ान के बाद

घोंसलों की तरफ लौटती चिड़ियाँ

सुहानी लगती हैं।"[86]

यहाँ एक बात की तरफ ध्यान देना बहुत जरुरी है कि कवि को यद्यपि अपने पारंपरिक मूल्यों और अस्मिता से प्यार जरुर है किन्तु इनमें जड़ हो चुकी रुढियों और अस्मिताओं को उन्होंने पीछे ही छोड़ दिया है। इनके यहाँ बेकार हो चुके मूल्यों और जड़ हो चुके रिश्तों की खोज नहीं बल्कि जिस पर वर्त्तमान और भविष्य का गौरव खड़ा है, उन्हीं की है। कवि ऐसे धर्म और इतिहास की खोज नहीं करना चाहता जिसने उसके सामाजिक और सांस्कृतिक विकास को अवरुद्ध किया हो बल्कि जिसने हमेंशा नए पथ की ओर अग्रसर किया है उसी का आह्वाहन है। कवि अक्सर सोचता है कि क्या सचमुच ही ऐसा वक्त आ गया है जहाँ किसी को किसी की कोई चिंता ही नहीं है ? लेकिन साथ ही उसके मन में आशा भी जगमगा रही है। मानव ने तरक्की के चाहे कितने ही सागर पार क्यों न कर लिए हों, कितनी ही चमक दमक उसकी ज़िन्दगी में क्यों न समा गयी हो लेकिन एक दिन उसके इसी दंभ के कारण जो बुरी गति होने वाली है उसके बाद भी कवि को विश्वास है कि मानवता को बचाने इस गहरे अंधकार में उसके पुराने भरोसेमंद साथी जरुर साथ देंगे।

देखा जाये तो कवि का मन बार-बार उन्हीं गौरवपूर्ण क्षणों पर जाकर ठहरता है जिन्हें लोग भूल गये हैं। वह मानता है कि लोगों के अपने पारंपरिक मूल्य और आत्मीय रिश्तों की जो सभ्यता पीछे छूट चुकी है वह एक दिन जरुर लौट कर वापस आएगी।'बैलगाड़ी' शीर्षक कविता में कवि को लगता है कि भले ही भौतिक साधनों की अंधी लालसा की दौड़

[86] *भगवत रावत : प्रतिनिधि कविताएँ* (2014) अरविन्द त्रिपाठी (सम्पा), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली : 98.

में हमारे पारंपरिक साजों-सामान पीछे छूट गये हों लेकिन एक दिन वही इस दौड़ में कछुए की चाल से आगे निकलकर अपना महत्व सिद्ध करेंगे। यहाँ बैलगाड़ी हमारे इन्हीं पारंपरिक मूल्यों, आत्मीय संबंधों और अस्मिता का प्रतीक बनकर उभरती है। कवि जानता है कि हमारी सभ्यता अभी मरी नहीं है, केवल उसे भौतिकता के बादलों ने ढक लिया है और एक दिन जब ये बादल छंट जाएँगे तब सभ्यता की वह बैलगाड़ी साफ साफ नजर आएगी -

"तब न जाने क्यों लगता मुझे
अपनी स्वाभाविक गति से चलती हुई
पूरी विनम्रता से / सभ्यता के सारे पाप ढोती हुई
कहीं न कहीं / एक बैलगाड़ी जरुर नजर आएगी।"[87]

भगवत रावत आज भी इन मूल्यों के लिए 'बच्चों के लिए एक कथा' बचाकर रख लेना चाहते हैं ताकि आने वाली पीढ़ी उस कथा को सुने और हो सके तो आगे इन्हें बचाने का प्रयास कर सके। वह बताना चाहते हैं कथा में समाये उन पारंपरिक मूल्यों और रिश्तों को जहाँ ऐसे भी लोग होते थे जिनमें खून का रिश्ता न होने पर भी उससे कहीं अधिक गहरा रिश्ता होता था। जो केवल घरों में ही बेरोकटोक नहीं आते जाते थे बल्कि एक-दूसरे के सपनो में भी उन्हें किसी की इजाजत नहीं लेनी पड़ती थी। देखा जाये तो हर देश हर सभ्यता का अपना एक गौरवपूर्ण समय होता है। उसकी संस्कृति के कुछ स्वर्ण पहलु होते हैं। आज वैश्विकरण के दौर में हर मनुष्य अपनी पुरानी सभ्यता से बिछुड़ता जा रहा है ऐसे में हर बुद्धिजीवी साहित्यकार को अपने इन पारंपरिक मूल्यों और रिश्तों की चिंता होना स्वाभाविक ही है। भगवत रावत की कविताएँ पढ़कर अफ्रीकन नाईजीरियन कवि गब्रिअल

[87] *भगवत रावत : प्रतिनिधि कविताएँ* (2014) अरविन्द त्रिपाठी (सम्पा), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली : 101.

ओकारा की प्रसिद्ध कविता 'वन्स अपॉन अ टाइम' का स्मरण हो आता है जहाँ वह भी अपने पुत्र से उस पुराने गौरवमय समय की बात करते हैं जब लोग मुक्त हंसी हँसते थे, और उनके दिलों में कोई स्वार्थ नहीं होता था लेकिन आज वो समय बदल चुका है और लोगों के हृदय स्वार्थ से भरे हुए हैं। ठीक उसी तरह भगवत रावत भी अपनी कविता में कहते हैं –

"कुछ दिन पहले / कुछ लोग हुआ करते थे...
वे बेरोकटोक एक दूसरे के घरों में आते जाते...
उनके घरों के दरवाजे कभी बंद नहीं होते थे...
थोड़ा सा समय निकालकर
सुना सको तो बच्चों को / यह कहानी जरुर सुनाएँ।"[88]

ओकारा जैसे कवि आगे जहाँ खुद को समय के साथ ढालने की बात कहते हैं वहीं भगवत रावत इस बनावटी दुनिया के संसार में उतरने से साफ मना कर देते हैं। वह आज भी अपने उसी सहज और साधारण रूप को बचाए हुए है मगर समाज से गायब मूल्यों की चिंता इन्हें आज भी उतनी ही है। इसलिए वह 'कथा' शीर्षक कविता में आज भी इन्हें बचाने की अपील करते नजर आते हैं। क्योंकि कवि को आज भी लगता है कि 'कुछ तो था जो बहुत जरुरी कहीं खो गया'। यह कुछ और नहीं बल्कि वही पारंपरिक मूल्य और सामाजिक रिश्तें हैं जिन्हें वह आज भी खोज रहा है मगर उन्हें बार-बार लगता है कि शायद कोई इन्हें चुराकर ले गया है और हम बेखबर अब तक भी किसी गहरी नींद में सो रहे हैं –

"मैं तो जग के इस विराट में अपनी दुनिया खोज रहा हूँ

[88] *भगवत रावत : प्रतिनिधि कविताएँ* (2014) अरविन्द त्रिपाठी (सम्पा), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली : 102.

कौन चुराकर उसे ले गया

ऐसी कैसी नींद लग गई ।"[89]

आज भी भगवत रावत बच्चे की उस तुतलाने वाली आवाज को सुनने के लिए बेचैन हैं जो आगे बढ़ने की अंधी दौड़ में पीछे छूट चुकी है । प्रतिद्वंद्विता की दौड़ में बच्चों तक का नैसर्गिक बचपन छीना जा रहा है । उन्हें अब तुतलाने तक की भी फुर्सत नहीं है । एक अनचीन्हे दबाव में वे अपनी स्वाभाविक प्रक्रियाओं को भी भूल चुके हैं लेकिन कवि का मन है कि आज भी उस तुतलाती आवाज को सुनने के लिए वह न जाने कितने घरों को छान मारता है जिसका न मिलना उसे किसी चमत्कार से कम नहीं लगता । जिस तुतलाती आवाज में कवि अपनी लोक भाषा, संगीत, कला के दर्शन करना चाहता है वह उसे कहीं दिखाई नहीं पड़ती और जब कभी अचानक उसे यह आवाज सुनाई पड़ती है तो जैसे सुनकर वह किसी भ्रम में पड़ जाता है । भगवत रावत की कविताओं की सबसे बड़ी विशेषता यही है कि इन्होने तमाम मूल्यों के खो जाने की भीड़ में भी कविताओं में इन मूल्यों को बचाने की कोशिश की है । और इन मूल्यों से परिचय प्राप्त करने के लिए हमें भगवत रावत की आंतरिक अनुभूति अथवा चेतना से भी परिचित होना पड़ेगा । इस संबंध में वीरेश चन्द्र लिखते हैं "कहना न होगा कि भगवत रावत की कविता से तादात्म्य स्थापित करने के लिए भावक को लोक-गीत और लोक-गाथा काव्य की आंतरिक लय को भली-भांति जानना होगा और जानना होगा कवि के हृदय को कचोटने वाले दुःख और उदासी के सबब को भी ।"[90] भगवत रावत के मन में अपने इस लोक को बचा लेने की तड़प है –

---

[89] *भगवत रावत : प्रतिनिधि कविताएँ* (2014) अरविन्द त्रिपाठी (सम्पा), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली : 105.

[90] वीरेश चन्द्र (2003), 'कविता जहाँ सबसे पहले आत्मीय संवाद है', *आलोचना त्रैमासिक,* सहस्त्राब्दी अंक 12 (जन-मार्च) : 95.

"घर लौटकर पता नहीं किसे बचाने के लिए

मैंने लिखी यही कविता, जबकि मैं अपना

लोक और परलोक दोनों ही खो चुका था।"[91]

भगवत रावत के यहाँ रिश्तों की बुनावट एक-दूसरे में इतनी गहन रूप में गुंथी हुई है कि इन्हें अलग करके नहीं देखा जा सकता। किसी गुलदस्ते की भांति इन्होंने इन रिश्तों को संजोया है। ज़िन्दगी की भागदौड़ और आपाधापी में व्यक्ति एक जगह नहीं ठहर पाया है। जीवन की अनेक जरूरतों को पूरा करने के लिए उसका एक जगह से दूसरी जगह पर आना जाना लगा ही रहता है। इसमें उसके एक और जहाँ नए संबंध बनते हैं वहीं पुराने छूट भी जाते हैं और अक्सर अधिक समय बीत जाने पर तो धूमिल होने के साथ ही ख़त्म भी हो जाते हैं। लेकिन भगवत रावत के यहाँ ऐसा नहीं है। इनके जीवन में इन संबंधों का बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान है। और मजे की बात तो यह कि ये संबंध केवल सजीव लोगों के साथ ही नहीं बल्कि उन स्थानों, वस्तुओं, पदार्थों के साथ भी ऐसे ही हैं जिनसे इनकी चेतना का विकास हुआ है। इसलिए कोई भी संबंध इनके यहाँ ऐसे ही सुरक्षित रहता है जिस तरह किसी संग्रहालय में कोई वस्तु रह सकती है। इस संबंध में प्रसिद्ध आलोचक विश्वनाथ त्रिपाठी लिखते हैं "भगवत रावत जीवन की अपार लालसा के कवि थे उनका कवि उनके व्यक्तित्व में आचरित होता था। उनके दैनंदिन व्यवहार में भी वह उमगता और छलकता रहता था।..वे मानवीय संबंधों को बहुत संभालकर रखने वाले प्रगतिशील रचनाकार थे।"[92]

---

[91] *भगवत रावत : प्रतिनिधि कविताएँ* (2014) अरविन्द त्रिपाठी (सम्पा), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली : 108.

[92] विश्वनाथ त्रिपाठी (2012), 'भगवत रावत का जाना या आगमन की आशा', *वर्तमान साहित्य,* वर्ष 28 : (अगस्त) : 07.

वास्तव में इन पारंपरिक सामाजिक रिश्तों को बचाए रखना किसी स्वार्थ के वश नहीं है बल्कि भगवत रावत सचमुच ही मनुष्यता के सबसे बड़े हितैषी कवि हैं । समाज के हर वर्ग और वस्तु से ही इनकी इस मानवीय खोज का कार्य पूरा होता है। इन्होने पुरानी स्मृतियों के सहारे जीवन के प्रत्येक भाव को तटस्थ निगाह से देखा है । जिन लोगों से वह पूरा जीवन घिरे रहे, जिनके सुख-दुःख में हमेंशा साथ दिया, एक समय पर रूक कर जब इनके बारे में कवि आकलन करता है तब पाता है कि भले ही इतनी घनिष्टता रही किन्तु ऐसा रिश्ता नहीं बन सका जिसे वास्तविक कहा जा सके तो दूसरी और ऐसे भी लोग रहे जिनके बिना इन्हें जीवन का अर्थ पूर्ण नहीं लगता। वह इन संबंधों को किसी पौधे की भांति रोप देना चाहते हैं ताकि कभी तो इन रिश्तों का वृक्ष लहलहा उठे । कवि ने पल पल इस जीवन का हिसाब लगाया है और हर बार इन्हीं मूल्यों और रिश्तों का कभी खत्म हो जाना तो कभी उनमें उम्मीद की किसी किरण का मिल जाना पाया है । दुनिया की आपाधापी में जब कोई पुराना मित्र आत्मीयता से इनके कंधे पर हाथ रख देता है तब इनके लिए वही किरण फिर से जगमगा उठती है । समुद्र के पानी की तरह भगवत रावत के जीवन में जिन स्मृतियों की लहरें उठती रहती हैं उनमें जैसे जीवन बार-बार लौट आता है । इन्हें कई बार लगने लगता है जैसे मनुष्य का जन्म फिर से एक बार हुआ है जब उसके पुराने मूल्य और संस्कार किसी निष्कंप लौ की तरह पुनः जगमगा उठते हैं । इनको लगता है जैसे दुनिया की सारी कटुताएं, घृणायें, इर्षाएं किसी रस्सी की तरह ऐंठी सी राख हो गयी हैं और जीवन फिर से अनेक रंगों में खिल उठा है।

भगवत रावत आत्मिक संबंधों के प्रति कितने सचेत कवि हैं ये इनकी स्मृतियों की गंध से बखूबी जाना जा सकता है। एक अरसे बाद अचानक कोई पुरानी चिट्ठी हाथ लगने

पर उसकी लिखावट में भी ये वो गंध महसूस कर लेते हैं । इनके लिए इसमें अभी भी मनुष्यता बची हुई है । बोलने की कुशलता से जिन संबंधों का निर्माण होता है उनकी बजाय लिखावट में वो संबंध कहीं गहरे निर्मित होते हैं । बोली गयी बात समय के साथ धूमिल पड़ जाती है लेकिन लिखित में वर्षों उन रिश्तों की महक बरकरार रहती है । हाथ से लिखे शब्दों में इन्हें आज भी वही ताजगी महसूस होती है । इनका मन और आँखे इन्हीं आत्मिक रिश्तों की चमक महसूस करते हैं । इन्हें लगने लगता है जैसे आज भी हाथ से लिखे शब्दों में हमारे पारंपरिक मूल्य, सामाजिक रिश्तें और हमारी अस्मिता बची हुई है और इसी में कहीं न कहीं मनुष्यता का रहस्य भी छिपा हुआ है –

"कितने दिनों बाद कोई लिखावट
अपने पूरे चेहरे-मोहरे के साथ आँखों में / ऊष्मा बन उभरी
सघन आत्मीयता भरी उँगलियाँ कागज पर
अक्षरों की बनावट से जैसे तन मन की सारी
नाड़ियों, धमनियों-शिराओं का पता बता देती हैं
यह आज भी मनुष्य होने का रहस्य है ।"[93]

भगवत रावत ने जिन पारंपरिक, सांस्कृतिक, सामाजिक मूल्यों और रिश्तों की बात की उन्हें घर-परिवार तक ही सीमित नहीं रखा बल्कि इनके यहाँ जिस 'घर' की बात आती है वह बड़े कैनवास पर समाज से जुड़ जाता है । एक समय हिंदी कविता में जो 'घर-वापसी' का नारा उछला था उसमें वास्तव में उसी बड़े समाज की बात की गयी थी जो अपने पारिवारिक सांस्कृतिक मूल्यों से होता हुआ घर के इस आँगन में पहुँचा था । यहाँ भी वही

[93] *भगवत रावत : प्रतिनिधि कविताएँ* (2014) अरविन्द त्रिपाठी (सम्पा), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली : 131.

तकलीफें, मनोदशाएं इसी 'घर' से होकर निकली हैं। बाहरी दुनिया से जितने भी सम्पर्क स्थापित हुए हैं इसी घर से होकर निर्मित हुए हैं। यहीं से वे मनुष्य की तलाश में निकलते हैं ऐसा मनुष्य जिससे वो जब चाहे अपने मन की गांठे खोल सके। घर से बाहर की यह यात्रा वास्तव में उनके अंतर्मन की भी यात्रा है जिसमें हर क्षण इन्होंने किसी परिचित की खोज की है। उस मनुष्य की तलाश जैसे इनके पूरे काव्य संसार की तलाश बन गयी है –

"न जाने कब से
एक ऐसे आदमी की तलाश थी मुझे जिससे
जब चाहे अपने अकेलेपन में बात कर सकूँ
जिसके आगे अपने मन की गांठे खोल सकूँ।"[94]

[94] *भगवत रावत : प्रतिनिधि कविताएँ* (2014) अरविन्द त्रिपाठी (सम्पा), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली : 137.

4. निष्कर्ष :

संग्रह की प्राय तमाम कविताओं में सामाजिक न्याय से वंचित मनुष्य के अनेक रूप मिलते हैं। भगवत रावत की चेतना पर यथार्थ के प्रत्यक्ष और तीव्र दबाव के कारण इन रचनाओं में अभिव्यक्ति भी उतनी ही बेलौस और बेबाक है। यह गौरतलब है की ज्यादातर रचनाएँ कथात्मक हैं लेकिन उनसे रचना की अपील बढ़ी ही है। इनमें आम आदमी, स्त्री, बच्चों और दलितों के प्रति तो संवेदना है ही, साथ ही समाज से रिसते चले गए पारंपरिक और सामाजिक मानवीय मूल्यों के प्रति एक मोह और तड़प भी है। मानवीय संबंधो की ऊष्मा का गहरा अहसास इनके यहाँ देखने को मिलता है। इसके साथ ही अपने समय का तीव्र अहसास तो है ही उनके खिलाफ आवाज भी है। समाज के प्रत्येक वर्ग के प्रति करुणा का जो भाव भगवत के यहाँ दिखाई पड़ता है वह अन्यत्र दुर्लभ ही है। सहज जीवन के विभिन्न पहलु, कला, सांस्कृतिक मूल्यों की चिंता इनकी अधिकांश कविताओं में विद्यमान है। संक्षेप में कहा जाये तो भगवत रावत सही अर्थों में सच्चे जीवन के कवि हैं।

उपसंहार

किसी भी साहित्यकार अथवा कवि की चेतना का मूल संबंध मनुष्यता से ही होता है जिसे वह अपने साहित्य में विभिन्न चरित्रों एवं स्थितियों के माध्यम से अभिव्यक्त करता है। इन चरित्रों और स्थितियों का विकास समाज में होता है अर्थात साहित्य और समाज इस रूप में एक ही धरातल पर आकर जुड़ जाते हैं। कवि अथवा साहित्यकार जब इन्हें गढ़ रहा होता है तब उसकी सामाजिक अनुभूतिक चेतना इन्हें सही दिशा और रूप देने का कार्य करती है। इस तरह जिस साहित्य का निर्माण होता है वह उसी समाज का एक मानवीय एवं अनुभूतिक रूप होता है जिसमें साहित्यकार रह रहा होता है और जब सामाजिक परिवेश बदलता है तो साहित्य के मूल्यों में भी बदलाव आ जाता है।

अनेक प्राचीन एवं नवीन भारतीय और पाश्चात्य साहित्यकारों और विद्वानों ने साहित्य और समाज को लेकर अपनी अपनी परिभाषाएं दी हैं जिनके निष्कर्ष स्वरुप दोनों में इस संबंध को लेकर लगभग एक ही राय ठहरती है कि साहित्य और समाज का अविच्छिन्न संबंध होता है। चेतना का संबंध यद्यपि मन से माना गया है तथापि वह मानव की अनुभूति से भी उतना ही संबंध रखती है। अनुभूति मानव के सामाजिक परिवेश के अनुसार बदलती रहती है और इस प्रकार जिस साहित्य का निर्माण होता है वह किन्हीं निश्चित मानदंडों को लेकर नहीं चलता बल्कि उसमें विभिन्न दृष्टिकोणों से उस परिवेश में बदलाव होता रहता है। इस तरह जब हम किसी साहित्यकार की सामाजिक चेतना अथवा उसके साहित्यिक सरोकारों का मूल्यांकन और विश्लेषण करने निकलते हैं तो वो हमारे लिए एक ही तरह के नहीं रह पाते | उपर्युक्त बातों के आलोक में जब मैंने भगवत रावत के काव्य का आलोचनात्मक

दृष्टिकोण से मूल्यांकन एवं विश्लेषण किया तो पाया है कि कवि भगवत रावत की सामाजिक चेतना का निर्माण उनके जिस परिवेश में हुआ उसमें उन आम आदमियों, स्त्रियों, दलितों, बच्चों और उन पारंपरिक मानवीय संबंधों का समावेश रहा है जिन्हें समाज की मुख्यधारा से धकेला जा रहा है। जिन पर भूमंडलीकरण और भौतिकवाद का प्रभाव तेजी से बढ़ता चला जा रहा है। जहाँ साधारण से जीवन के लिए अनुगूंज और संघर्ष की लड़ाई लड़ी जा रही है | कवि की चेतना जिस आम आदमी को अभिव्यक्ति दे रही है वह रोजमर्रा के कामों में ही अपना जीवन व्यतीत करने वाला आम आदमी है। यद्यपि वह व्यवस्था और भौतिकता के बोझ तले पिसता चला जा रहा है तथापि उसके यहाँ किसी क्रांति की अनुगूंज नहीं है। यहाँ भगवत रावत की चिंता यही है कि हाशिये पर धकेल दिए गए आम आदमी को आज साहित्य के केंद्र में लाना जरुरी है | इसके लिए किसी विचारधारा में बंधने की जरुरत नहीं है | भगवत रावत ने आम आदमी की स्थिति को यहाँ केवल उपरी निगाह से नहीं देखा है और न ही वह इसके लिए किसी फोरी बहस में पड़ने के लिए तैयार हैं बल्कि इनकी वास्तविक स्थिति का जायजा लेती हुई इनकी कविताएँ ठोस और विस्तृत रूप में यहाँ मौजूद हैं | इसके साथ ही स्त्री के भी यहाँ कई रूप सामने आते हैं जहाँ वह एक ओर रोजमर्रा के घरेलू कामों में खट रही है तो दूसरी ओर पुरुष के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर आर्थिक सहयोग में भी पीछे नहीं है। साथ ही शोषण के विरुद्ध संघर्ष करती हुई स्त्री के भी यहाँ कई रूप हैं जो समाज की विपरीत परिस्थितियों में भी अपने संघर्ष की लड़ाई को जारी रखे हुए है | जिन्हें अपने पर भरोसा है, जो न्याय के लिए समाज के हर तबके से लोहा लेने को तैयार है तो दूसरी ओर उसकी कारुणिक स्थिति भी दिखाई पड़ती है। इस प्रकार स्त्री के कई पहलुओं से भगवत रावत की चेतना विकसित हुई है। इसी तरह बच्चों और दलितों की

जब यहाँ बात आती है तो उनके प्रति दया और उनकी इस अवस्था के पीछे की व्यवस्था पर क्षोभ भी होता है । उनके शोषण की जो तस्वीर यहाँ बनती है वह हमारे समाज के खोखलेपन की ओर भी संकेत करती है । इन दलितों और बेसहारा लोगों की ज़िन्दगी को बहुत ही पास से कवि ने देखा है | इनकी कविताओं में इन लोगों की जो स्थिति है वह केवल दिखावे मात्र की नहीं है बल्कि स्वयं अनुभूत हुई संवेदना से उपजी है | कवि मांग करता है कि इन्हें इनका वास्तविक हक़ मिलना चाहिए | इनके लिए मूलभूत आवश्यकता के साथ ही शिक्षा और रोजगार की भी व्यवस्था होनी चाहिए | इनके अधिकारों के लिए कवि की चेतना निरंतर कविताओं में झलकती दिखाई देती है | साथ ही भगवत रावत के यहाँ बच्चों की खिलखिलाती हंसी नहीं है, उनके भौतिक रूप का सौंदर्य यहाँ नहीं है, बल्कि ऐसे बच्चे हैं जो अति साधारण हैं | जिनके बचपन में हंसती मुस्कुराती किलकारियां, शरारतें, उमंगें और उल्लास से भरा जीवन नहीं है | दुनिया जहाँ की चिंता से मुक्त उन्मुक्त गगन में उड़ते, समाज के सभ्य स्कूलों में शिक्षा ग्रहण करते बच्चे यहाँ एकदम नदारद हैं | यहाँ वो साधारण और गरीब बच्चे हैं जिन्होंने घर की जिम्मेदारियों को बचपन में ही अपने कन्धों पर ओढ़ लिया है | जिनके लिए शिक्षा कोसों दूर है | इन सबके साथ ही कवि की चिंता हमारी संस्कृति और समाज से रिसते चले गए उन पारंपरिक और मानवीय संबंधों को लेकर भी उजागर हुई है जो भूमंडलीकरण और भौतिकता के दौर में कहीं पीछे छूट चुके हैं। सहज जीवन के विभिन्न पहलू, संगीत, कला, संस्कृति की चिंता कवि की समग्र सामाजिक चेतना में यहाँ पसरी पड़ी है । इन सब को खोने और पाने का मोह कवि की चेतना में प्रबल है । भगवत रावत की कविताओं की सबसे बड़ी विशेषता यही है कि इन्होने तमाम मूल्यों के खो जाने की भीड़ में भी इन मूल्यों को बचाकर रखने की कोशिश की है | किसी गुलदस्ते

की भांति इन्होने इन मूल्यों को संजोया है और यह किसी स्वार्थ के वश नहीं है बल्कि कवि की मनुष्यता उन्हें इस ओर कदम बढ़ाने के लिए प्रेरित करती है | वह इन संबंधों को किसी पौधे की भांति रोप देना चाहते हैं | इन कविताओं में कभी इन रिश्तों का ख़त्म हो जाना तो कभी उनमे किसी उम्मीद की किरण का मिल जाना दिखाई देता है | भगवत रावत आत्मिक संबंधों के प्रति कितने सचेत कवि हैं ये इनकी स्मृतियों में बसा हुआ है जो कविताओं में यहाँ छलक पड़ता है | इन स्मृतियों में बसें संबंधों की तलाश इनके पूरे काव्य संसार की तलाश बन गयी है |

अपने पूरे काव्य संसार में भगवत रावत जिस साधारण कथ्य को जगह देते हैं उसके लिए किसी अलग भाषा को नहीं गढ़ते | इनकी भाषा बहुत ही सहज और संप्रेषणीय रही है | काव्य में नितांत अलंकरण विहीन भाषा रचना इनकी सबसे बड़ी विशेषता रही है जिसमे प्रभाव डालने की जो क्षमता है उसका सौंदर्य ही अलग है | इनकी भाषा में कथात्मकता और वर्णनात्मकता के साथ लोक-बोली का पुट समाया हुआ है जो इन्हें नागार्जुन और त्रिलोचन जैसे कवियों की श्रेणी में खड़ा करती है | इनकी भाषा में कलावाद का निषेध साफ साफ दिखाई पड़ता है | संवाद के लहजे में सारी स्थितियों को बयाँ करना इनकी भाषा की विशेषता रही है | संक्षेप में कहा जाये तो भगवत रावत की सामाजिक चेतना का निर्माण उपर्युक्त विवेचन के आलोक में ही मुखर रूप में इन कविताओं में व्यक्त हुआ है।

संदर्भ ग्रन्थ

आधार ग्रन्थ :

1. ***भगवत रावत : प्रतिनिधि कविताएँ* , सं. अरविन्द त्रिपाठी, राजकमल प्रकाशन, 1-बी दरियागंज नई दिल्ली-2, पहला संस्करण : 2014**

सहायक ग्रन्थ :

1. *साहित्य सिद्धांत* –रेनेवेलेक : आस्टिन वारेन, अनुवादक : बी एस पालीवाल, लोक भारती प्रकाशन, 15-ए, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद-1, संस्करण : 1977
2. *काव्य के रूप* – गुलाब राय, आत्माराम एण्ड संस, कश्मीरी गेट, दिल्ली -6, संस्करण : 1975
3. *प्रेमचंद : कुछ विचार,* सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद, संस्करण : 1973
4. *समाजशास्त्र के मूल तत्त्व,* प्रो. सत्य व्रत सिधान्तालंकार , प्रकाशक : विजय कृष्ण लखनपाल 'विद्या विहार', बलवीर एवेन्यू, देहरादून, संस्करण : 1954
5. *साहित्य का समाजशास्त्र,* डॉ. नगेन्द्र, नेशनल पब्लिशिंग हॉउस, 23, दरियागंज, नई दिल्ली-2, संस्करण : 1982
6. *इल्लुजन एण्ड रियल्टी,* क्रिस्टोफ़र कॉडवेल, पी.पी.हाउस, रानी झाँसी रोड, नई दिल्ली-55, संस्करण : 1981
7. *इतिहास और आलोचना*, नामवर सिंह, राजकमल प्रकाशन, 1-बी दरियागंज नई दिल्ली-2, संस्करण : 2014
8. *साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका,* डॉ. मैनेजर पाण्डेय, आधार प्रकाशन, पंचकूला, संस्करण : 2006
9. *कविता के नए प्रतिमान,* नामवर सिंह, राजकमल प्रकाशन, 1-बी दरियागंज नई दिल्ली-2, संस्करण : 2016
10. *हिंदी कविता : अभी बिल्कुल अभी*, नंदकिशोर नवल , राजकमल प्रकाशन, दिल्ली-2, संस्करण : 2014
11. *सच पूछो तो,* भगवत रावत, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली-2, पहला संस्करण : 1996
12. *भगवत रावत : प्रतिनिधि कविताएँ,* सं. अरविन्द त्रिपाठी, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली-2, पहला संस्करण : 2014
13. *ऐसी कैसी नींद,* भगवत रावत, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली-2, संस्करण : 2004
14. *कविता का दूसरा पाठ और प्रसंग,* भगवत रावत, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली-2, संस्करण : 2006
15. *कविता का वर्तमान,* संपादक डॉ. पी.रवि, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली-2, संस्करण : 2011
16. *कविता का दूसरा पाठ और प्रसंग*, भगवत रावत, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली-2, संस्करण : 2006

पत्रिकाएँ :

1. *लमही* (त्रैमासिक), जनवरी-मार्च 2011, वर्ष 31, अन्क 31, संपादक - विजय राय, गौमती नगर उत्तर प्रदेश
2. *वर्तमान साहित्य* (मासिक), अगस्त 2012, वर्ष 28, संपादक – नमिता सिंह, 28, एम.आइ.जी, अवन्तिका-I, रामघाट रोड, अलीगढ़-202001
3. *आलोचना* (त्रैमासिक), जनवरी-मार्च 2003, सहस्त्राब्दी अंक 12, संपादक – परमानन्द श्रीवास्तव, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली-110002
4. *वसुधा* (अर्धवार्षिक) जनवरी-जून 2000, अंक 48, संपादक –प्रो. कमला प्रसाद, 14-बी, सेक्ट-1,गोविन्दपुरा इंडस्ट्रियल एस्टेट, भोपाल-462023
5. *समकालीन भारतीय साहित्य* (द्विमासिक) नवंबर-दिसंबर 2004, वर्ष 25, अंक 116, संपादक –अरुण प्रकाश, साहित्य अकादमी प्रकाशन, रविन्द्र भवन, 35, फिरोजशाह मार्ग, नई दिल्ली-110001
6. *संवेद* (त्रैमासिक) जुलाई ,अंक 66, संपादक – किशन कालजयी, रोहिणी नई दिल्ली-110089
7. *बहुवचन (*त्रैमासिक*)* अक्तूबर-दिसंबर 2015, अंक 47, म.गा.अ.ह.वि. वर्धा नागपुर

शब्दकोश :

1. *हिंदी साहित्य कोश-भाग-1,* सं. धीरेन्द्र वर्मा, ज्ञानमंडल प्रकाशन लिमिटेड, वाराणसी, संस्करण : संवत् 2020
2. *हिंदी शब्दकोश,* डॉ. हरदेव बाहरी, राजपाल एण्ड संस, कश्मीरी गेट दिल्ली-6, संस्करण : 2012